वर्ष ४४ ] * * * [ अङ्क ४

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,६५,०००

## विषय-सूची

कल्याण, सौर वैशाख २०२७, अप्रैल १९७०



### चित्र-सूची



वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

कुरुक्षेत्रके रणाङ्गणमें वरदहस्त

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

# कल्याण

देवादिदेव भगवान् कामपाल नमोऽस्तु ते । नमोऽनन्ताय शेषाय साक्षाद् रामाय ते नमः ॥
नमः श्रीकृष्णचन्द्राय परिपूर्णतमाय च । असंख्याण्डाधिपतये गोलोकपतये नमः ॥

वर्ष ४४ | गोरखपुर, सौर वैशाख २०२७, अप्रैल १९७० | संख्या ४ | पूर्ण संख्या ५२१

## कुरुक्षेत्रकी समर-भूमिमें वरदहस्त श्रीकृष्ण

अज अविनाशी अखिल भुवनपति मायापति स्वतन्त्र भगवान ।
प्रकट हुए निज लीलासे ही चिदानन्दविग्रह द्युतिमान ॥
लीला ललित दिव्य व्रजमें कर, भक्तोंको कर शुचि रसदान ।
पहुँचे द्वारावती, रचे लीलाके अद्भुत अमित विधान ॥
कुरुक्षेत्रकी समर-भूमिमें बने पार्थ-सारथि तज मान ।
शरणागतको वरदहस्त हो करते अक्षय अभय-प्रदान ॥

याद रक्खो—मनुष्य-जन्मका एकमात्र उद्देश्य है—उस परमार्थ गतिपर पहुँच जाना, जिसे भगवत्प्राप्ति, भगवत्प्रेम-प्राप्ति, मोक्षलाभ, मुक्ति, आत्मसाक्षात्कार आदि भिन्न-भिन्न अनेक नामोंसे निर्दिष्ट किया जाता है। इसीलिये जीवको भगवत्कृपा तथा उसके पुण्यबलसे मनुष्य-शरीर मिलता है। मनुष्य कर्मयोनि है, इसमें कर्म करनेकी स्वतन्त्रता है। कौन-से कर्म कर्तव्य हैं और कौन-से त्याज्य हैं, यह बतलानेके लिये विधि-निषेधात्मक शास्त्र मनुष्यको दिये गये हैं।

याद रक्खो—कर्मके प्रधानतया तीन परिणाम होते हैं—(१) नरक, नारकी योनि, आसुरी शरीर आदिकी प्राप्ति—मनुष्य-शरीर मिलनेपर भी कर्मानुसार न्यूनाधिक रूपसे अङ्गहीनता, विकलाङ्गता, रोग, दरिद्रता, अभाव, अपमान, भय, विषाद, दासत्व, भाँति-भाँतिके कष्ट और विपत्तियोंसे घिरे रहना। (२) स्वर्गादि लोक, दिव्य योनि, उत्तम शरीर आदिकी प्राप्ति और मानव-शरीरमें कर्मानुसार न्यूनाधिकरूपसे सर्वाङ्ग-पूर्णता, स्वास्थ्य, समृद्धि, धनैश्वर्य, अधिकार, सम्मान, निर्भयता, प्रसन्नता, भाँति-भाँतिके भोग-सुख-सम्पत्तियोंका मिलते रहना। (३) जीवन्मुक्ति, भगवत्प्राप्ति, भगवद्धाम-की प्राप्ति, मोक्ष—मुक्ति, निर्वाण आदि विभिन्न नामोंसे निर्दिष्ट परम गति-लाभ।

याद रक्खो—जिन कर्मोंके परिणाम नरक—नारकी योनि आदि हैं, वे ही निषिद्ध या पापकर्म हैं। अज्ञान, ईश्वर तथा परलोकमें अविश्वास, धर्ममें अनास्था, मिथ्या ममता-आसक्ति-कामना, द्रोह-दम्भ-द्वेष, इन्द्रियोंके दासत्व, भोगोंमें सौभाग्य-सुखकी आस्था; धर्म, राष्ट्र, सम्प्रदाय, प्रान्त, जाति, वर्ण, भाषा, भूमिकी सीमा, दल, दलान्तर्गत दल आदिके मिथ्याभिमानवश सीमित नीच स्वार्थके कारण मनुष्य भविष्यके परिणामको भूलकर पापकर्ममें प्रवृत्त होता है और बार-बार प्रवृत्त होनेपर उसीमें गौरव-बोध करने लगता है। वह क्रमशः पूरा नास्तिक होकर विवेकहीन पशु तथा घोर विषयासक्त असुर-राक्षस-पिशाचसे बढ़कर नीच-स्वभाव बन जाता है और मानव-योनिमें प्राप्त कर्माधिकार, साधन-सामग्री आदिका पूर्ण दुरुपयोग कर अपने भविष्यको दीर्घकालके लिये नष्ट-भ्रष्ट और दुःख-दावानलसे जलनेवाला बना लेता है। उसकी मिथ्या मान्यता या उसी विचारके बहुसंख्यक लोगोंके बहुमतसे निश्चित मिथ्या मान्यतासे सत्य सिद्धान्त-पर—कर्मानुसार परलोक-पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरकादि लोकों, योनियों एवं परिस्थितियोंकी प्राप्तिपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कर्मानुसार बाध्य होकर उसे कर्मफलरूपमें उन सबका भोग करना ही पड़ता है। वह किसी प्रकार भी उनसे छूट नहीं सकता।

याद रक्खो—जैसे पाप—निषिद्ध अपवित्र कर्मका परिणाम नरकादि-फल-भोग होता है, वैसे ही पुण्य—वैध पवित्र कर्मोंका परिणाम स्वर्गादि-सुखभोग होता है और यही पुण्यकर्म यदि ममता, कामना, आसक्तिका त्याग करके लोकहितकी दृष्टिसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ, भगवान्‌की पूजाके लिये किये जायँ तो मानव-जीवनके परम और चरम उद्देश्यकी सिद्धिरूप भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसलिये पापकर्मका तो सर्वथा ही त्याग करें, पुण्यकर्म भी सकामभावसे न करें; क्योंकि वे भी बन्धनकारक ही हैं और निष्कामभावसे भगवत्सेवा या भगवत्प्रीतिके लिये पुण्य-पवित्र कर्मोंका आचरण करें।

याद रक्खो—मानव-जीवन बहुत दुर्लभ है और है क्षणभङ्गुर; पता नहीं, कब समाप्त हो जाय। इसलिये जरा भी समय व्यर्थ न खोकर इसी कामको सबसे पहला तथा सबसे प्रधान समझकर पूर्णरूपसे इसीमें लग जायँ। मन-बुद्धि-शरीरसे जितनी भी आभ्यन्तरिक और बाह्य क्रिया हो—सब केवल और केवल भगवत्प्रीत्यर्थ हो; मनकी सारी ममता, सारी आसक्ति केवल श्रीभगवान्‌में हो और उन्हींके चरणकमलोंकी निरन्तर संनिधि और स्मृति रहे—यही एकमात्र कामना हो।

'शिव'
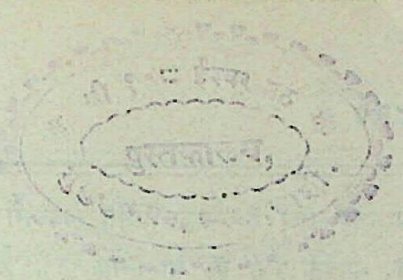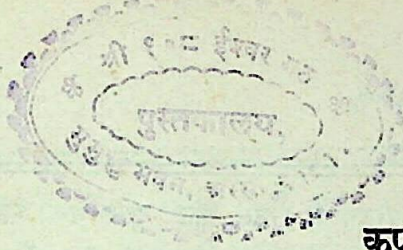
# कृपाके विलास

( लेखक—अनन्तश्री स्वामीजी अखण्डानन्दजी सरस्वती )

१. ईश्वरवादी मानवसमाजमें यह सिद्धान्त सर्व-सम्मतिसे मान्य है कि ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, अपराधीन, परमप्रेमास्पद एवं परम कृपालु है। किसी-किसी सम्प्रदायमें ऐसा स्वीकार करते हैं कि ईश्वर सर्वथा स्वतन्त्र होनेपर भी प्रेमके परतन्त्र है। इसमें यह प्रश्न है कि ईश्वर जीवके हृदयमें रहनेवाले प्रेमके परतन्त्र है अथवा अपने हृदयमें रहनेवाले प्रेमके ? जीव जैसे भगवान्‌के सौन्दर्य, औदार्य, सौशील्य, माधुर्य आदि सद्‌गुणोंको देखकर उनपर मुग्ध हो जाता है, तो ईश्वर जीवके किन गुणोंको देखकर उसके प्रति मुग्ध होता है ? वस्तुतः ईश्वर किसी अन्यके गुणोंको देखकर मुग्ध नहीं होता। उसमें ही उसका स्वरूपसिद्ध कोई सहज स्वाभाविक गुण है कि वह स्वयं अपनी कृपा बरसाने लगता है—'मेघ जलमय प्रभु कृपामय', 'कृपैव प्रभुतां गता', 'प्रभु मूरति कृपामयी है।' प्राचीन ग्रन्थोंमें कारुण्य, कृपा, अनुकम्पा, अनुग्रह, पुष्टि, दया आदिके नामसे एक ही वस्तु प्रसिद्ध है और वह है—भगवान्‌का सहज स्वभाव। वह नैमित्तिक नहीं है, भागवत-आनन्दका सरल-सरल, तरल-तरल पावन-प्रवाह है।

२. भगवत्सम्बन्धी अनेक प्रश्नों और समस्याओंका समाधान उनकी कृपामें ही निहित है, जैसे निराकार साकार क्यों होता है ? अव्यक्त व्यक्तिके रूपमें क्यों प्रकट होता है ? पूर्ण परिच्छिन्न कैसे होता है ? अकाल कालकी धारामें कैसे आ जाता है ? कारण कार्यके रूपमें कैसे परिणत होता है ? वह मनुष्य, पशु-पक्षी आदिके रूपमें क्यों अवतीर्ण होता है ? असम्बन्ध होनेपर भी सम्बन्धी क्यों बनता है ? इन सबका और ऐसी अनेक मानसिक विकल्प ग्रन्थियोंका, बौद्धिक उलझनोंका एक ही समाधान है—दृश्यके अनेक नामरूपमें अजस्र प्रवहमान एवं तरङ्गायमान कृपा-स्रोतस्विनीकी अखण्ड धारा। सत् पुरुष अपनी अन्तर्दर्शिनी, तत्त्वावगाहिनी दृष्टिसे इसका संतत दर्शन करते रहते हैं। कृपा एक दर्शन है, भाव नहीं। श्रीमद्भागवतमें अनुकम्पाके 'समीक्षण'का वर्णन है, 'प्रतीक्षण'का नहीं। समीक्षण प्राप्तका होता है और प्रतीक्षण अप्राप्तका। सम्पूर्ण जीव-जगत्‌का कृपामय परमेश्वरमें ही उन्मज्जन-निमज्जन हो रहा है। कृपा-प्राप्तिकी लालसा मत करो, उसको पहचानो।

३. श्रीमद्भागवतके व्याख्याकार महापुरुषोंने कहा है कि जब श्रीयशोदा माताने बालकृष्णको बाँधनेके लिये हाथमें रस्सी उठायी तो भगवान्‌की स्वतःसिद्ध अनेक शक्तियाँ उसमें बाधा डालनेके लिये उद्यत हो गयीं। व्यापकता कहती थी कि जिसका ओर-छोर नहीं, वह रस्सीकी लपेटमें कैसे आयेगा ? पूर्णता कहती थी कि जिसमें बाहर-भीतर नहीं, वह रस्सीके भीतर कैसे अँटेगा ? असंगता घोषणा कर रही थी कि प्रभुके शरीरके साथ रस्सीका संग असम्भव है। अद्वितीयताने स्पष्ट मना कर दिया कि स्वमें स्वका क्या बन्धन ? बन्धन परके साथ होता है। इस आपाधापीके समय श्रीमती भगवती भास्वती कृपादेवी मन-ही-मन मुसकुरा रही थीं। उन्होंने एक बार अपनी तिरछी चितवनसे देखा और सब शक्तियाँ निष्प्राण-सी धरी-की-धरी रह गयीं। बालकृष्ण प्रभु बन्धनमें आ गये। 'दामोदर' नाम-रूप प्रकट हो गया। भक्त केवल प्रेमकी रस्सीसे ही नहीं, पशु बाँधनेकी रस्सीसे भी प्रभुको बाँध लेते हैं। भक्तमें इतना सामर्थ्य कहाँसे आता है ? इस

प्रश्नका उत्तर है—'कृपयासीत् स्वबन्धने ।' ठीक ही है, भगवती कृपा ही 'शक्ति-चक्रवर्तिनी' हैं, भगवान्‌की प्रेयसी पटरानी ।

४. जब घर-बाहर—सर्वत्र प्रलयाग्निकी ज्वाला धधकने लगती है, अपने पाप-तापकी मायासे सम्पूर्ण विश्व झुलसने लगता है, उस समय एक सच्ची माँ जैसे अपने शिशुओंको गोदमें उठा लेती है, वक्षःस्थलसे चिपका लेती है, उनको बाहरकी आती वायु भी नहीं लगने देती, उनकी शय्या बन जाती है, अपने छातीके दूधसे ही उनका पालन-पोषण करती है, वैसे ही महाप्रलयके समय भगवान् सब जीवोंको अपनी ही सत्ता, ज्ञान और आनन्दमें लीन कर लेते हैं। उनके संस्कार-शेष बीजके सिवा अर्थात् उनके जीवत्वके सिवा और कुछ भी शेष नहीं छोड़ते । जैसे माँके गर्भमें शिशु समग्र सम्पोषण और संवर्द्धन प्राप्त करता है, उसी प्रकार यह जीव ईश्वरके गर्भमें विश्राम, आराम, शान्ति और पुष्टि प्राप्त करता है । महाप्रलयके समय भी इस प्रकार जीवकी शय्या बनकर उसे आराम देना और प्रलय-कालानलके तापसे बचा लेना—यह भगवान्‌की कृपाका ही एक स्वरूप है । यह 'जननी कृपा' है और जीवके जीवनमें भी सर्वदा ही अनुगत रहती है । जब-जब जीवका पौधा मुरझाने लगता है, तब-तब उसकी वृद्धि-समृद्धि एवं पुष्टि-तुष्टिके लिये वह जननी ही 'उज्जीवनी' बनकर आती है । आप किसी भी जीवके जीवनमें इस माँका दर्शन कर सकते हैं । यह उपवास और भोजन, शोषण और पोषण, प्रक्षालन और स्नेहन—सभी प्रक्रियाओंसे जीवका हित करती रहती है । इसको पहचाननेमें देर-सबेर हो सकती है, परंतु इसके क्रियान्वयमें कभी कोई रुकावट नहीं पड़ती ।

५. प्रलयके समय जीव शयनमें होता है । विस्मृति और अज्ञानका गहरा पर्दा इसको चारों ओरसे आच्छादित करके रखता है । उसे कोई दुःख-चिन्ता नहीं है—यह तो ठीक है । परंतु इस शयन-दशामें कुछ धर्म, अर्थ, भोग, मोक्ष भी तो नहीं है । कोई शिशु सोता ही रहे निद्रा-तन्द्रामें अलसाया हुआ, निकम्मा पड़ा रहे—यह बात किसी भी वात्सल्यमयी जननीको कैसे रुचिकर हो सकती है ? वह चाहती है कि हमारा बेटा उठे, भले-बुरेको पहचाने, कुछ करे, कुछ कमाये, अपने पौरुषसे कुछ भोगे । भला कौन ऐसी माँ होगी, जो यह न चाहे ? वही माँ अपने बालकको जगाती है । एक-एकको अलग-अलग जगाती है । एक साथ जगाती है । सबके आलस्य भगाती है । स्नान-मार्जन कराती है । हाँ, वही माँ जो जननी थी, 'प्रबोधनी' हो गयी । वह प्रबोधनी कौन है ? वह प्रभुकी कृपा है । यदि यह जीव प्रलयकी प्रगाढ़ निद्रामें सोता ही रहता तो क्या इसको किसी पुरुषार्थकी प्राप्ति होती ? सोते हुए जीवोंको जागरण-दशामें लाना यह प्रबोधनी कृपा है ।

६. श्रीमद्भागवतमें, सोते हुए ग्वाल-बालोंको जगानेके लिये स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् शृङ्ग-ध्वनि करते हुए आते हैं—'प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा ।' जागरणके पश्चात् श्रीकृष्णके साथ ही वे भव-वनमें प्रवेश करते हैं । अनेक रूप-प्रपञ्चका दर्शन होता है । यदि ईश्वर चैतन्य साथ न हो तो न प्रपञ्चका दर्शन हो और न उसकी क्रीडा हो, इसलिये यहाँ आकर कृपा ही 'प्रपञ्चनी' हो जाती है, अर्थात् अनेक प्रकारके दृश्योंका सर्जन-विसर्जन करने लगती है । जो कुछ कारण-शरीरमें लुप्त, गुप्त या सुप्त था, उसको वह विस्तारके साथ फैलाती है । अन्तःकरण, बहिःकरण, विषय, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति, अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश, मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि सभी स्थूल-सूक्ष्म विषयोंका विस्तार, प्रचार-प्रसार प्रपञ्चनी कृपा ही करती

है । अविद्या-निद्रामें सुषुप्त जीवको जहाँ कुछ भी प्रतिभात नहीं होता था, वहाँ अब सब कुछ प्रतीत होने लगा । शिशुके नेत्र खुल गये, मन काम करने लगा । यह जो दृश्य, दर्शनकी सामान्य शक्ति है, वह प्रबोधनी है और जो दृश्यकी अभिव्यक्ति हैं, वह प्रपञ्चनी है ।

७. अब कृपाका एक नया विलास प्रकाशमें आता है । बिना इस कृपाकी अभिव्यक्तिके कोई भी प्राणी अपनी अनुकूलता और प्रतिकूलताको, सुपथ्य और कुपथ्यको नहीं जान सकता । वृक्ष अपनी वृद्धिके लिये कहाँसे मुड़े ? चींटी शक्करके साथ कैसे जुड़े ? पक्षी कौन-सा चारा खाये ? पशु कौन-सी घास चरें ? यह भोजन जीवनका साधन है और यह मरणका—यह कैसे जान पड़े ? करना न करना, खाना न खाना, छिपना प्रकट होना, बोलना न बोलना—ये सब प्राणियोंको कैसे ज्ञात हो ? सचमुच वही वात्सल्यमयी जननी कृपा-प्रशिक्षणी रूप धारण करके जीवनमें विशेष ज्ञानकी एक धारा प्रवाहित करती है । अग्निका स्पर्श दाहक है । माताका वक्ष:स्थल वाहक है । पाँवसे चलना, हाथसे खाना, प्यास लगनेपर जल पीना, इष्ट-अनिष्टकी पहचान कराना—यह सब भगवान्‌की 'प्रशिक्षणी' कृपाका विलास है ।

८. इसी प्रशिक्षणसे जीवनमें प्रणयन अर्थात् निर्माणका अवतरण होता है । जीवनके प्रणयनका मूल प्रशिक्षण ही है । इसके बिना जीव-जगत् सब अंधे ही रहें । अन्तरमें बैठकर प्रवृत्ति और निवृत्तिके लिये उन्मुख कौन करता है ? वह अन्त:प्रविष्ट शास्ताकी प्रशासन शक्ति ही है । वह सभी वस्तुओं, व्यक्तियों और भावोंका परस्पर विलक्षण विशेष-विशेष रूप, आकृति, गुण, धर्म, स्वभावकी रचनामें भिन्न-भिन्न प्रकारका उत्पादन, सम्भरण और संहरण क्यों करती है ? वह किसीके पूर्व-संस्कारोंका अनुगमन अथवा नवीनीकरण ही क्यों करती है ? विचारदृष्टिसे देखनेपर वह शक्ति किसी हेतु, निमित्त या प्रयोजनसे प्रेरित नहीं जान पड़ती । जब शक्ति अहैतुक ही कार्य करती है तो 'प्रणयनी' कृपाके सिवा उसके लिये दूसरा नाम नहीं हो सकता ।

९. इसी प्रणयनके अनन्तर इष्ट-अनिष्टका भाव परिपक्व हो जाता है; तब इष्टकी प्राप्तिकी इच्छा होती है और अनिष्टको दूर करनेकी । यह इच्छा ही 'अभिलाषणी' कृपाका रूप है । जो अभिलाष देता है, वही प्राप्त भी कराता है और प्राप्तिके साधन भी देता है । धर्म, अर्थ, काम—कुछ पाना है । उसके लिये लौकिक-वैदिक कर्म चाहिये । कर्मके कारण उपकरण चाहिये । कर्मका अधिकारी कर्ता चाहिये । उपयुक्त स्थान और समय चाहिये । सहायक और सामग्री चाहिये । फलकी प्राप्तिके साथ-साथ उसमें रुचि चाहिये । उसके भोगके योग्य शरीर चाहिये । निर्विघ्न निर्वाह चाहिये । विशेष ज्ञान चाहिये । यह सब लेकर कौन आता है ? प्रभुकी 'प्रापणी' कृपाके ही ये भिन्न-भिन्न रूप हैं । यह है सर्वदा, सर्वत्र, सबपर; परंतु पहचानता है कोई-कोई ।

१०. अनुकूल अथवा प्रतिकूल वस्तुकी प्राप्ति होनेपर दातापर दृष्टि जानी चाहिये, परंतु कुछ ऐसी मोहमयी लीला चल रही है कि अनुकूलमें राग हो जाता है, प्रतिकूलमें द्वेष और दातापर दृष्टि नहीं जाती । रागसे पक्षपात और द्वेषसे क्रूरताका जन्म होता है । रागमें स्वाद और द्वेषमें कटुता; परंतु ऐसा क्यों होता है ? ऐसी दशामें प्रभुकी कृपा कहाँ प्रसुप्त हो जाती है ? गम्भीरतासे देखो तो वह कहीं जाती नहीं है । हमारी स्वतन्त्र विवेकशक्तिको जाग्रत् करती रहती है । क्या कल्पित गणित ठीक-ठीक सीख लेनेपर वास्तविक गणित-का साधन नहीं बनता ? बिना सुख-दु:खके झकोरे सहन किये किसके जीवनमें स्फूर्तिका उदय हुआ है ?

फिर भी हम मान लेते हैं कि राग-द्वेष विवेककी ओर नहीं, मूर्च्छा अथवा मोहकी ओर ढकेलते हैं। एक ऐसी मोहनी माया छा जाती है कि उससे देवता-दैत्य ही नहीं, शिव भी मोहित हो जाते हैं। यह मोहनी आत्माकी अक्षुण्ण प्रकाश-शक्तिपर ही आधारित है। जो मोहनी देवता-दैत्य—दोनोंके लिये 'लोभनी' है, वही फलकी प्राप्ति और अप्राप्ति—दोनों ही दशामें 'क्षोभणी' हो जाती है और परिणामतः देवासुर-संग्राम होता है। इस संग्राममें कृपा भक्तके प्रति 'उत्कर्षणी' और अभक्तके प्रति 'अपकर्षणी' होकर प्रकट होती है। यही दैत्यराज बलिके भी सर्वस्वात्मसमर्पण और भगवद्वशीकरणमें हेतु बनती है। प्रह्लाद इसको पहचानते हैं, बलिकी धर्मपत्नी भी। यह 'मोहनी' कृपा किसीको जहाँ-का-तहाँ जड बना देती है और 'रोधनी' संज्ञा धारण करती है। किसीके मनमें विरोध उत्पन्न करके 'विरोधनी' बन जाती है और उसका स्मरणोद्दीप्त मन प्रभुके सम्मुख कर देती है। इस प्रक्रियामें जो लोग प्रभुके कृपा-वैभवको देखकर मुग्ध होने लगते हैं, उन्हें वह प्रभुके सम्मुख कर देती है और 'अनुरोधनी' बन जाती है।

११. यह मोहनी किस-किस विलक्षण और विचक्षण-रीतिसे विभिन्न लक्षण जीवोंको संसारकी विविध प्रवृत्तियोंमें लगाकर 'प्रवर्तनी'का काम करती है और भिन्न-भिन्न योनियोंमें डालकर परिवर्तनीका रूप धारण करती है। किसी-किसीको पूर्वावस्थामें लौटाकर अपनेको 'परावर्तनी' बना लेती है। यह पृथक्-पृथक् निरूपण करना शक्य नहीं है। संसारमें जितनी क्रिया है, भाव है, संज्ञा है—सभी इस मोहनीके नवनवायमान 'अभिव्यञ्जनी'के ही रूपान्तरण हैं। जो इनके बाह्य स्वाङ्गके रंगमें ही अपने अन्तरङ्गको रँग लेता है, वह चक्रवातमें तृणके समान उड़ता-पड़ता रहता है और जो इसके अन्तरङ्गमें विराजमान करुणा-वरुणालय प्रभुके तरङ्गायित रूपको देख लेता है, वह क्षण-क्षण उनका दर्शन करके आनन्दमग्न रहता है।

१२. प्रभुकी कृपाका एक रूप है—'आकर्षणी'। परंतु वह प्रारम्भमें 'विकर्षणी'का रूप ग्रहण करके आता है। विकर्षणी भी अपना सहज सौरभ तब प्रकट करती है, जब वह तापनी होकर हृदयमें प्रपञ्च-संवेदनके प्रति 'तापनी' बन चुकती है। कहनेका अभिप्राय यह है कि जब ईश्वर-वियोगिनी वृत्ति प्रपञ्च-संयोगमें ताप और ज्वाला-का अनुभव करने लगती है—संसारकी सुरभित वस्तुमें भी दुरभिसंधिकी शङ्का होती है, रसमें भी विष घोला हुआ जान पड़ता है, सरूपतामें छिपी कुरूपता दीखने लगती है, सुकुमार मारका दूत लगने लगता है, मधुर स्वर सुख-विधुरताके कर्णभेदी ध्वनिसदृश प्रतीत होने लगते हैं और प्रिय-सम्बन्ध बन्धन लगने लगते हैं। तब यह तापनी संसारकी ओरसे विकर्षण करके प्रभुकी आकर्षण-धारामें डाल देती है। अब ऐसा लगने लगता है कि कोई मेरा प्रेमी है। वह मुझे अपनी ओर खींच रहा है बलात्। मेरा वास्तविक प्रियतम वही है। मेरा निवास-स्थान उसीके पास है। इतने दिनोंतक मैंने घोर अन्धकारमें, पराये घरमें जीवन व्यतीत किया है। मैंने भ्रमवश दुःखको सुख माना है। मैं जहाँ हूँ, वहाँ शान्ति नहीं है, प्रकाश नहीं है, सुख नहीं है। मुझे अपने प्रियतमके उस रसमय, मधुमय प्रदेशमें चलना चाहिये, जहाँ बस वही-वह विहार करता है।

१३. जब इस प्रकारके संकल्प उठने लगते हैं तब इनके प्रवाहमें वासनाके मल धुलने लगते हैं। कृपा 'क्षालनी' होकर आ जाती है और धीरे-धीरे अन्तर्देश पवित्र होने लगता है। वह कृपा 'द्रावणी' और 'स्नेहनी' भी बनती है। प्रभुके लिये तीव्र व्याकुलताकी ज्वालासे वह अन्तःकरणको द्रुत करती है और उसमें परमानन्द-मय प्रभुके लिये एक प्रकारकी स्निग्धता उत्पन्न करती है। इस क्षालन, द्रावण और स्नेहनकी प्रक्रियाके बिना हृदयमें रासायनिक प्रभाव उत्पन्न नहीं होता और उसमें भगवदाकार होनेकी योग्यता नहीं होती। वासनाएँ

दूसरा आकार बना देती हैं। ममता कठोर बनाती है और अन्योन्यमुखता रुक्ष करती है। इन तीनों दोषोंकी निवृत्तिके लिये कृपा उक्त तीनों रूप धारण करती है और क्षालित, द्रावित एवं स्निग्ध हृदयमें भगवान्के प्रासादिक रूपका अनुभव कराती है। यही उसका एक नाम 'प्रसादनी' भी हो जाता है।

१४. इस अवस्थामें ईश्वरके जिस स्वरूपका अनुभव होता है, वह अत्यन्त विविक्त एवं स्पष्ट नहीं होता; क्योंकि वासनाओंके शान्त हो जानेपर भी अविद्याके संस्कार बने रहते हैं, परंतु हृदय शुद्ध होनेके कारण ईश्वरको सम्पूर्ण रूपसे अपना विषय बनानेके लिये एक दिव्य वृत्तिका उदय होता है। उसमें व्याकुलता नहीं है। दाह और ताप भी नहीं हैं, परंतु एक सम्पूर्ण अनुभूतिके लिये आन्तरिक प्रयत्न होता रहता है। इस प्रयत्नको 'अन्वेषणी', 'विवेचनी' अथवा 'जिज्ञासनी' कृपाका नाम दिया जा सकता है। इसमें अपने अन्वेष्य अथवा अनुसंधेय वस्तुके अतिरिक्त किसी और विषयकी ओर चिन्तनकी धारा नहीं गिरती। परिणामतः 'प्रकाशनी' कृपा अभिव्यक्त हो जाती है। उस समय अपने अन्तः-करणके ही सूक्ष्मतम आधार प्रदेशमें भगवत्स्वरूपकी स्फूर्ति होने लगती है। वह स्वरूप न घटादिके समान प्रत्यक्ष होता है और न स्वर्गादिके समान परोक्ष। वस्तुतः वह अवेद्य अपरोक्ष ही होता है, परंतु अन्वेषणीसे पृथक्, विवेचनीसे स्वरूप और जिज्ञासनीसे प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्मके रूपमें अनुभव होता है। इस अनुभूतिको 'मेलनी' की संज्ञा दी जा सकती है; क्योंकि जिसका अनुसंधान कर रहे थे वह अब मिल गया है। यह मेलनी ऐसी है कि फिर वियोजनी अथवा संयोजनी वृत्तिका संसर्ग नहीं होता; क्योंकि वियोग-संयोगकी कल्पनाके लिये कोई अवकाश नहीं रहता। कर्मके नष्ट होनेपर फलका नाश अथवा ह्रास होता है, किंतु प्रमाण वृत्तिके रहने, न रहनेका प्रमेय वस्तुपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वस्तुके लिये स्मरणी-विस्मरणी भी अकिंचित्कर है। भक्तिमार्गसे भी मेलनी केवल नित्य सम्बन्धकी अभिव्यञ्जनी होती है, उत्पादनी नहीं।

१५. इसमें संदेह नहीं कि यह सर्वविध बन्धनसे मुक्त कर देती है, चाहे इसका रूप कुछ भी क्यों न हो? इसलिये मेलनीका ही एक नाम 'मोचनी' हो जाता है। यह अनात्मासे, अनिष्टसे, द्वैतभ्रमसे सर्वथा मुक्त करनेमें समर्थ है। इसके बाद तीन रूप प्रकट होते हैं—'शमनी'में सम्पूर्ण वृत्तियोंकी उपशान्ति होकर प्रपञ्चका अभाव हो जाता है। 'स्वच्छन्दनी'में वृत्तियोंकी प्रतीतिमात्र उपस्थिति-अनुपस्थितिका कोई महत्त्व नहीं रहता और 'ह्लादनी' रसिक, रस्य और रसनको परमानन्द, एकरस कर देती है। तब भूमि, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी, पर्वत, नदी, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, समीर, आकाश, मन, भोक्ता, भोग्य, कर्ता, कर्म—कहाँतक गिनायें—सब कुछ भगवन्मय हो जाता है। धाम, नाम, रूप, लीला, गुण, स्वभाव, दुर्जन, सज्जन–सब कुछ रस-स्वरूप परमात्माकी निर्माय लीलामात्र होते हैं। यह ह्लादनी कभी 'प्रसादनी', कभी 'अभिसारणी' और कभी 'माननी' होकर आती है। सुखकी व्यञ्जनाके लिये मनाती है। मिलनेके लिये नदीकी तरह बहती है। आनन्दधारामें हिम-शिलाके समान मान करके बैठ जाती है। यह चाहे जो रूप धारण करे, रहती है—'भावनी', 'रञ्जनी', 'तर्पणी, और 'नन्दनी'। चाहे आँख-भौं चढ़ी हो, चाहे प्रसन्न; वह प्रियतमकी प्रसन्नताके लिये अपनी प्रियताकी अभिव्यक्ति ही होती है; क्योंकि अब आनन्द-रसके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इसीसे यह कभी मिलकर 'मोदनी' दिखाती है तो कभी 'मादनी' दीखती है। संयोग और वियोग घुल-मिलकर एक हो चुके होते हैं और उनकी आकृति-विशेष होनेपर भी तत्त्व विशेष नहीं होता। वह रस-विशेषका उल्लास है, प्रेमका प्रकाश है, प्रीतिमहार्णवके

तरङ्ग हैं; कभी दो हैं, कभी एक हैं। वहाँ 'कभी' है, परंतु काल नहीं। 'वहाँ' है; परंतु देश नहीं। दो हैं परंतु द्वित्व नहीं। यह 'स्वरूपणी' कृपा अभेदस्वरूपा ही है।

१६. इस कृपाका स्वरूप देश-काल-वस्तु-व्यक्तिसे परे भी है और उनमें अनुस्यूत भी है। वस्तुतः कृपाके अतिरिक्त और कोई महत्ता, सत्ता नहीं है। वह अरूपिणी रहकर सर्वरूपमें प्रकाशित होती है। कृपा और कृपालु दो तत्त्व नहीं हैं। जब, जहाँ, जो कृपालुका स्वरूप है, 'तब' वहाँ, वही कृपाका स्वरूप है। आत्मा-परमात्माका भेद और अभेद—दोनों ही कृपा हैं। जब सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च अन्धतमसाच्छन्न होता है, तब क्या हमारे नेत्रोंके भीतरसे सूर्य-ज्योति बेरोक-टोक झाँकती हुई नहीं ज्ञात होती? अन्धकारके पीछे क्या सूर्यमण्डल जगमगाता हुआ नहीं होता? अन्धकार, दुःख, मृत्युके आगे-पीछे सर्वत्र वही मङ्गलमय ज्योति झिलमिला रही है। इस 'अरूपिणी' कृपाको केवल पहचानना पड़ता है, पाना नहीं। तत्त्वज्ञानका अर्थ भी इसे पहचानना ही है। इसको चाहे ब्रह्म कह लो या आत्मा! सगुण-निर्गुणका भेद व्यावहारिक है, पारमार्थिक नहीं।

१७. 'रूपिणी' कृपा तब समझमें आती है जब वह हमारे इष्टके स्मरणमें हेतु बनती है—जैसे सत्संग मिले, भगवद्धाम मिले, कुछ कालतक भगवान्‌की आराधना मिले। भक्तकी दृष्टिसे वह रूपिणी कृपा होगी; क्योंकि वह साधनका रूप धारण करके आयी है। यह कृपा अपने-अपने पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिमें अनुकूलता उत्पन्न करनेपर पहचानी जाती है। जिज्ञासुको संत मिले, अर्थीको सेठ मिले, कामीको कामिनी मिले और धर्मात्माको सत्पात्र, तो उसे वह भगवान्‌की रूपिणी कृपा समझेगा। परंतु यह दृष्टि पुरुषार्थकी उपाधिसे है। इसमें कृपाकी सच्ची पहचान नहीं है। सच्ची कृपामें अपनी इच्छा या आवश्यकतापर दृष्टि नहीं जाती। उसमें तो प्रत्येक परिस्थितिमें ही उसका समीक्षण होता है, प्रतीक्षण नहीं; प्रार्थना भी नहीं। जो है, उसके लिये क्या प्रतीक्षा और क्या प्रार्थना? उसकी अनेकरूपता वैसे ही है, जैसी रास-लीलाके समय श्रीकृष्णकी अनेकरूपता या ब्रह्माके प्रति अनन्त रूपका दर्शन। कृपाकी पहचान हो जानेपर उसमें स्मरण, प्रतिष्ठा और निष्ठाकी भी आवश्यकता नहीं रहती। जो कुछ है, नहीं है, भासता है, नहीं भासता, प्रिय है, अप्रिय है, भेद है, अभेद है—कृपाका ही विलास है।

## सबमें प्रभुको देखकर सबका आदर-सम्मान करो

जीवमात्रसे द्वेषरहित रह, रखो सभीमें मैत्री भाव।<br>
दुखियोंको नित सुख देनेका रखो विनययुत सक्रिय चाव॥<br>
छीनो नहीं कभी, मनसे भी—पर-धन, पर-यश, पर-अधिकार।<br>
करो सभीसे सदा सत्य-हित-प्रेम-भरा सात्त्विक व्यवहार॥<br>
समझो सबके हितमें निज-हित, सबके सुखको निज-सुख मूल।<br>
करो न हनन किसीके हित-सुखका कदापि मनसे भी भूल॥<br>
सबमें सदा देख प्रभुको ही दो सबको आदर-सम्मान।<br>
छाये रहें सदा ही मनमें एकमात्र प्रियतम भगवान॥

# जप और उसका प्रभाव

## [ पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश ]

( प्रेषक—श्रीरामकृष्णप्रसादजी एडवोकेट )

यह संसार प्रतिदिन हमसे पीछे छूटा जाता है, इसकी किसीको कल्पना भी नहीं होती। एक-एक क्षण सामने आता है तथा वह अतीतमें परिणत हो जाता है और इसी तरह इस जीवनका शेष होकर कर्मानुसार पुनर्जन्म होता है। यह हमारे धर्मका अकाट्य सिद्धान्त है—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

तो इससे यह सिद्ध होता है कि इस संसारके कालचक्रमें जीवको बार-बार आना-जाना पड़ता है। अतएव लोग महात्माओंसे प्रश्न करते हैं कि इस जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति पानेका क्या उपाय है ? महात्मालोग मुक्तकण्ठसे इसका उत्तर देते हैं कि 'जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति पानेका सरल साधन है—भगवन्नाम-स्मरण और जप। इसके अतिरिक्त इस असार संसार-सागरसे पार होनेका दूसरा कोई सरल साधन नहीं है। योग, तप, ज्ञान आदि अनेक मार्ग परमात्माकी प्राप्तिके लिये बताये गये हैं, किंतु ये सबके लिये सरल और सुलभ नहीं हैं। इस कलिकालमें सबके लिये सरल, सुलभ और अमोघ साधन तो यह भगवन्नाम-स्मरण और जप ही है।'

भगवान्‌के अनन्त नाम, अनन्त गुण और उनकी अनन्त महिमा है, जिनका पूरा वर्णन करना किसीके लिये भी सम्भव नहीं। आवश्यकता है केवल विश्वासकी और वह विश्वास भी दृढ होना चाहिये। जिन साधकोंको दृढ विश्वास है और दृढ विश्वासके साथ जो अपने चित्तकी सारी वृत्तियोंको भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें लगाकर भगवन्नामका जप करते हैं, वे ही सफलता प्राप्त करते हैं।

प्रायः लोग पूछा करते हैं कि जप कैसे करना चाहिये। शास्त्रमें जपके तीन प्रकार बतलाये गये हैं—

( १ ) वाचिक, ( २ ) उपांशु और ( ३ ) मानसिक।

वाचिक जप वह है, जो हम वाणीके द्वारा भगवान्‌के नामका जप ( उच्चारण ) करते हैं और श्रोता सुनते हैं। उपांशु जप वह है, जिसमें नामोच्चारणमें ओष्ठ हिलते हैं, परंतु कोई शब्द सुनायी नहीं पड़ते हैं। तीसरा मानसिक जप है। वह भीतर-ही-भीतर होता रहता है। उस जपमें न तो ओष्ठ हिलता है, न कोई शब्द होता है और न कोई शब्द सुनायी पड़ता है।

ये सभी जप अच्छे हैं। जिस साधकको जो पसंद हो, वह उसीको अपने सुविधानुसार अपनावे, किंतु सब जपोंमें एक ही स्मरणीय महत्त्वकी यह बात है—भगवान्‌के चरणोंमें अपनी सारी वृत्तियोंको लगाकर जप करना।

ऐसे जपका प्रभाव क्या होता है, इसको अपने शब्दोंमें न कह करके गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें ही कहना श्रेयस्कर है—

सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई।
तेहिकें हृदयँ रहहु रघुराई॥
मन ते सकल बासना भागी।
केवल राम चरन लय लागी॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें।
तात निरंतर बस मैं ताकें॥

गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंका भाव स्पष्ट है कि जिन साधकोंका चित्त भगवान्‌के चरणोंमें लगा है

और जिनके चित्तमें कोई विषय-वासना या अहंकार नहीं है, उन्हीं साधकोंके हृदयमें भगवान्‌का निरन्तर निवास है और उन्हीं भक्तोंके वशमें भगवान् रहते हैं। स्वयं भगवान्‌ने नारदजीसे कहा है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

'नारद! न तो मैं वैकुण्ठमें रहता हूँ और न तो योगी—तपस्वियोंके हृदयमें निवास करता हूँ। मेरा तो निवास वहीं होता है, जहाँ प्रेमानुरागी मेरे भक्त मुझे स्मरण करके मेरा नाम-गुण-गान करते हैं।'

जिन साधकोंने त्याग और तपस्याके द्वारा अपने हृदयको भगवान्‌का निवासस्थान बना लिया है, उनका क्या प्रभाव होता है, इसके विषयमें तैत्तिरीयोपनिषद्‌में एक मन्त्र है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति॥
(२।४)

इसका भावार्थ यह है कि जिस परमात्माको जानने-की शक्ति मन और इन्द्रियोंमें नहीं है, उस परमपिता परमात्माके नामका निरन्तर जप करके और उस नाम-जपके आनन्दको जानकर साधक किसीसे भयभीत नहीं होता है; बल्कि महान् आत्मबल प्राप्तकर निर्भय बन जाता है।

अब कल्पना कीजिये कि ऐसे साधुसंतों या साधकोंका, जो ऐसे स्थानोंपर निवास करते हों जहाँ एकान्त स्थान या घोर जंगल हो, भादोंकी अँधेरी रात हो, पास ही हिंसक जीव-जन्तु घोर गर्जना करते हों, ऐसे लक्षण दिखायी पड़ें कि बिना आक्रमण किये वे नहीं छोड़ेंगे, सर्वथा निर्भय बने हुए, भगवान्‌के भरोसे सभी जीवोंमें प्रेम-दृष्टि रखते हुए भगवन्नाम-जपमें निमग्न रहना कितने महत्त्वकी बात है। ऐसे साधक कुछ ही दिनोंमें भगवान्‌के समीप पहुँच जायँगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। साधकोंके सामने ऐसी परिस्थितियाँ यदा-कदा उत्पन्न होती हैं, किंतु भगवन्नाम-जपका ऐसा प्रभाव है कि ये सारे संकट उस साधकका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकते। वह साधक क्रमशः आगे बढ़ता हुआ परमानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

---

# तेरा प्यार!····तेरा प्यार!!····तेरा प्यार!!!

जीवन-संध्या-आलोकवान,
एकाकी-स्निग्ध-ज्योति-दीपकवत्
तेरा प्यार
अनिश्चयमें पटु पथ-प्रदर्शक!
संघर्षमें सरस, सुपुष्ट सम्बल!
और—
अवसादमें अबाध ताजगी! असीम स्फूर्ति!!
तेरा प्यार
तीखा पर तरल, सरल,
—पंडिती-ज्ञान-गुत्थी-अबोझिल!
तेरा प्यार
सदाबहार,
अचल आधार
रहा है सदैव और रहेगा आगे भी
जीवन-संध्या-आलोकवान
एकाकी-स्निग्ध-ज्योति-दीपकवत्
तेरा प्यार!··तेरा प्यार!!··तेरा प्यार!!!

—बालकृष्ण बलदुवा (बी० ए०, एल्-एल० बी०)

# परमार्थ-पत्रावली

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अप्रकाशित पत्र )

( १ )

सादर प्रणाम ! आपका पत्र मिला । समाचार विदित हुए । सनातन धर्मके विरोधियोंकी ओरसे किये जानेवाले प्रश्न लिखकर उत्तर पूछा, सो क्रमसे नीचे उत्तर लिखे जाते हैं । पर इन सज्जनोंसे तर्क करनेमें कोई लाभ नहीं है; क्योंकि ये लोग शास्त्रोंका रहस्य तो समझते नहीं, सुनी-सुनायी बातोंपर अथवा आग्रहवश प्रश्न करके लोगोंकी बुद्धिमें भ्रम डालनेकी चेष्टा करते हैं ।

( १ ) कलियुगका अर्थ कलयुग—कलोंका युग माननेवालोंसे पूछना चाहिये कि कलोंका विकास पहले हुआ या इस युगका नाम 'कलियुग' पहले रक्खा गया । यह तो मानना ही पड़ेगा कि युगका नामकरण उस समय हो चुका था, जब कलोंका विकास नहीं हुआ था । अतः इन लोगोंकी मान्यताके अनुसार भी नाम निर्देश करनेवाले भविष्यके ज्ञाता सिद्ध हो जाते हैं । फिर उनकी सभी बातें क्यों नहीं माननी चाहिये । उनको मूर्ख बतानेवाले स्वयं अनभिज्ञ सिद्ध होते हैं, विचार करें ।

( २ ) सत्ययुगको कृतयुग अर्थात् चौथा युग भी कहते हैं । उससे नीचा त्रेता अर्थात् तीसरा, उससे नीचा द्वापर अर्थात् दूसरा और उससे नीचा कलियुग । यह इसका क्रम है । इसको बिना समझे महर्षियोंको दोषी बताना सर्वथा अनुचित है ।

( ३ ) सिंहस्थ ( कुम्भ ) नाटक नहीं है । उस समय सूर्यका कुम्भ राशिसे सम्बन्ध होता है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है । संसारको उपदेश देनेके लिये उस समय मेला करनेके लिये चार उत्तम स्थानोंको निश्चय करके ज्ञान-चर्चाका मार्ग निकाला गया तो इसमें बुराई ही क्या है ? यह तो अच्छी बात ही है । उन महर्षियोंको मूर्ख क्यों बताया जाता है ?

( ४ ) श्रीगणपति ही नहीं, सभी प्राणी मैलसे ही बनते हैं । पर जो जिस माता-पिताके मलसे बनता है, उसका स्वभाव प्रायः वैसा ही होता है । इस कारण पूर्वजोंका ही वर्ण संतानका वर्ण होना चाहिये । वर्ण-संकरता और व्यभिचार बढ़ जानेसे आज वर्ण-व्यवस्थामें जो कठिनाई आ गयी है, यह कोई शास्त्रीय विधानका दोष नहीं है; लोगोंके बुरे भाव और प्रवृत्तियोंका दोष है ।

( ५ ) खास वेदोंमें यह स्पष्ट लिखा है कि 'पद्भ्यां शूद्रोऽजायत'—ईश्वरके दोनों चरणोंसे शूद्र जाति उत्पन्न हुई । अतः ब्राह्मणके निम्न श्रेणीके अङ्ग—पैरमें अपने सर्वोत्तम अङ्ग—सिरको झुकाना—यही नियम है, सिर चूमना नहीं । सिर सूँघना तो अपने छोटोंको प्यार देनेकी प्रथा है जो कि बहुत ही उचित है ।

( ६ ) श्रीहरिश्चन्द्रके युगमें बच्चे और स्त्रीको बेचनेके मार्केट खुले हुए नहीं थे, श्रीहरिश्चन्द्रने अपने सत्य पालन करनेके लिये यह कष्ट स्वीकार किया था; इस इतिहाससे त्यागका आदर्श दिखाया गया है । इसका उल्टा अर्थ निकालना पागलपन है । आजका युग तो तब अच्छा माना जाता, यदि कोई सत्यकी रक्षाके लिये कुछ भी त्याग करनेको राजी होता । आज तो त्यागका दम्भ करनेवाले भी अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये त्यागका नाटक प्रदर्शित करते रहते हैं । अपनी छातीपर हाथ रखकर बतावें, क्या आजके ५० वर्ष पहले इतना छल-कपट और बेईमानी थी, जितनी आज है ?

( ७ ) अजामिल पहले कितना भगवद्भक्त और सदाचारी था—इसका पता उसका पूरा जीवन-चरित्र पढ़नेसे चल सकता है। उसने 'नारायण' नामसे यद्यपि अपने पुत्रको ही पुकारा था, परंतु पूर्वसंस्कारोंके कारण उसे भगवान् नारायणकी स्मृति हो आयी। इसमें क्या आश्चर्य है ? क्या हमारे जीवनमें ऐसा नहीं होता ? उसके अपराधोंको क्षमा करके उसे सत्कर्मोंमें प्रवृत्त किया गया है—पूरा चरित्र पढ़नेकी कृपा करें। इसका यह मतलब निकालना कि 'दिनभर पाप करते रहें और शामको ईश्वरका नाम ले लें, बस उद्धार हो गया।'—यह तो अनुचित है। नामकी महिमामें तो इसे ( नामके बलपर पाप करनेको ) 'नामापराध' माना है और इस भावसे किये जानेवाले पापोंको 'वज्रलेप पाप' बताया गया है।

( ८ ) 'भगवान्-भगवान्' कहनेसे क्या होता है—इसका उनको क्या पता, जो कभी नाम-जप नहीं करते या लोगोंको ठगनेके लिये नामका ढोंग करते हैं। नामके उच्चारणसे नामीकी स्मृति होती है, यह तो स्पष्ट ही है। इसके सिवा, इसका महत्त्व तो वे ही जान सकते हैं, जो विश्वासपूर्वक नाम-स्मरण करके प्रभुके प्रेममें निमग्न हो जाते हैं और उस रसास्वादके सामने जगत्‌के बड़े-से-बड़े भोगको नगण्य अनुभव करते हैं। तहसीलदारको पुकारनेसे वह यदि कानोंसे बहरा नहीं होगा तो उचित बातको अवश्य सुनेगा; पर प्रभुके नाममें जो महत्त्व है, वह उसमें कहाँसे आयेगा ?

( ९ ) 'पुराण गप्प हैं और मूर्ख ब्राह्मणोंके रचे हुए हैं'—ऐसा कहनेवाले स्वयं मूर्ख हैं। पुराणोंमें बहुत-सी अत्यन्त उपयोगी विद्याएँ भरी हैं। उदाहरणके लिये अग्निपुराण, नारदपुराण आदिको देखिये। बिना समझे बुराई करना कहाँतक उचित है, विचार करें।

( १० ) 'ब्राह्मणोंने दुनियाका सत्यानाश किया'—यह कहना प्रमादमात्र है। सत्यकी रक्षा करनेवाले ब्राह्मण ही हुए हैं। उन्होंने अपने स्वार्थका त्याग करके किस प्रकार संसारकी सेवा की थी, वनमें तप-त्यागपूर्ण जीवनमें रहकर किस प्रकार वे विद्याका अर्जन तथा विना मूल्य प्रसार करते थे—यह उनकी जीवनीसे स्पष्ट है।

( ११ ) ब्रह्मपुराण, शिवपुराण, विष्णुपुराण आदि सभी ठीक हैं। एक ही भगवान्‌के तीन रूप माने गये हैं। उपासकोंकी रुचि विभिन्न होती है; अतः उसे पुष्ट करनेके लिये एक-एक स्वरूपकी अलग-अलग महिमा बतायी गयी है। अतः सभी सत्य हैं।

( १२ ) देवीपुराणमें क्या लिखा है, उसे पूरा पढ़नेसे उसका महत्त्व समझमें आ सकता है। जिस घटनाका उदाहरण दिया जाता है, उसका रहस्य छिपा हुआ है, इसलिये साधारण मनुष्य उसे नहीं समझ पाते।

( १३ ) श्रीतुलसीदासजीको मूर्ख बताना अपनी मूर्खताका परिचय देना है। उनकी सर्वगुणसम्पन्न काव्यरचनाको और दिव्य भावोंको समझनेवाला कभी ऐसा कहनेका साहस नहीं कर सकता। शूद्र, पशु, स्त्रीको ताड़नका अधिकारी बताना कोई बुरी बात नहीं है। ताड़नका अर्थ डंडेसे ढोलकी तरह पीटना नहीं है। जो जैसे शासनके योग्य है, उसके अनुसार उसपर शासन करनेका नाम ताड़न है। आवश्यकतापर नीतिके* अनुसार शासन न किया जाय तो गृहस्थ सुचारुरूपसे चल ही नहीं सकता। जिनमें बुद्धि कम हो, उनको भयसे ही रास्तेपर लाया जा सकता है। इसीलिये तो राज्य-सत्ता स्वीकार की गयी है।

* नीतिमें पाँच वर्षके बाद दस वर्षतक बच्चेको ताड़ना देनेकी बात कही गयी है—'लालयेत् पञ्च वर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।' तो क्या इसका अर्थ बच्चेको डंडेसे पीटना है ? यहाँ उसे नियन्त्रणमें रखना ही अभिप्रेत है।

( १४ ) श्रीहनुमान् क्या थे, थे या नहीं—इसका निर्णय वे किस इतिहासके आधारपर करना चाहते हैं ? क्योंकि सबसे प्राचीन श्रीहनुमान्‌का चरित्र वाल्मीकीय रामायणमें है। उसके रचयिताको यदि कोई मूर्ख कहे तो वह स्वयं मूर्ख सिद्ध होगा। उसे झूठा मान लेनेपर श्रीहनुमान्‌जीकी सत्ता ही सिद्ध नहीं होगी। अतः कहनेवाले अनर्गल बात करनेवाले सिद्ध होंगे। वाल्मीकीय रामायणमें स्पष्ट ही श्रीहनुमान्‌जीको वानर (पशु) माना है।

( १५ ) जाम्बवान्‌के विषयमें भी श्रीहनुमान्‌जीवाला ही उत्तर है। शङ्का करनेवाले महोदयको यह पता नहीं कि ये देवताओंके अवतार थे एवं इनमें मनुष्यरूप धारण करनेकी भी शक्ति थी।

( १६ ) रावणके दस सिर थे, उसी प्रकार उसके शयन करनेके लिये पलंग भी बना हुआ था। उस समय कारीगरोंकी कमी नहीं थी। उनके लिये कपड़े बनानेवालोंकी भी कमी नहीं थी। इस विषयमें शङ्का करना सर्वथा निराधार है।

( १७ ) कुम्भकर्णके मुँह, नाकसे बंदर निकल भागते थे, यह बात आपको समझमें न आवे तो आप मत मानिये। पर कोई आश्चर्य नहीं है। जैसे मुर्देके मुँह, नाकमेंसे चींटी आती-जाती रहती है, उसी प्रकार कुम्भकर्ण-जैसे राक्षसोंके मुँह-नाकमेंसे बंदर निकल जायँ तो क्या आश्चर्य है ?

( १८ ) वाल्मीकीय, अध्यात्म और तुलसीकृत रामायणमें जो कथाभेद है, इसका कारण तो श्री-तुलसीदासजीने स्पष्ट बताया है। विभिन्न कल्पोंमें अनेक प्रकारसे श्रीरामने विभिन्न लीलाएँ कीं। उन सबका पूरा वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता, जिनसे जितना हो सका, वर्णन किया। कल्पभेदके लीलाभेदोंके कारण कथाभेद हैं; अतः सभी सत्य हैं, ऐसा मानना चाहिये।

( १९ ) पति पत्नीका ईश्वर है, यह बात तो स्त्रीके लिये कही गयी है। पुरुषको तो यह कहा गया है कि वह अपनी स्त्रीको अर्धाङ्गिनी माने, उसका आदर करे, हरेक काममें एक मित्रकी भाँति उससे सम्मति ले और घरके कामका सारा अधिकार उसको सौंपकर निश्चिन्त रहे। उसे घरकी सम्राज्ञी माने। इतना ही नहीं, स्त्रीका अनादर करना घोर पाप माना गया है। चरित्र-का भाव पूरा समझे बिना आक्षेप करना भोलापन है।

( २० ) श्रीकृष्णकी सोलह हजार स्त्रियाँ थीं, उसी प्रकार श्रीकृष्णमें उतने ही रूप धारण करनेकी शक्ति भी तो थी; फिर आश्चर्य क्या ? छप्पन करोड़ यादवोंको समस्त भारतके छप्पन करोड़ प्राणी किस आधारपर मानते हैं, यह तो माननेवाले ही जानें। इतिहासका तो यह कथन नहीं है। श्रीनन्दबाबाकी नौ लाख गौओंके चरनेके लिये कई कोसोंमें जंगल था, यह बात वहीं लिखी है। उसे समझ लें तो शङ्का नहीं रहेगी। सब व्रजवासियोंकी गौएँ कितनी थीं, उनकी संख्या वहाँ नहीं लिखी है, तब कौन बतावे ?

( २१ ) श्रीशिवके लिङ्ग गिरनेकी बात रूपक है; इसका रहस्य बिना समझे शङ्का करना निरर्थक है। इसी प्रकारके और भी रहस्यमय वर्णन वेदोंमें और पुराणोंमें भरे पड़े हैं। आज उनको समझने-समझाने-वालोंकी कमी हो जानेके कारण भ्रम होता है। अतः सज्जनोंको चाहिये कि जो अंश समझमें न आवे, उसे छोड़ दें। उन बातोंको काममें लाना आवश्यक नहीं, जो कि युक्तियुक्त न हों।

( २ )

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। उत्तर इस प्रकार है—

ब्रह्मचर्य-पालनके लिये आवश्यक है—श्रम, संयम, सदाचार, स्वाध्याय और सेवायुक्त जीवन। जो मनुष्य हर समय किसी-न-किसी कर्तव्य-पालनमें लगा रहता है,

निठल्ला नहीं रहता, उसके मनमें कामवासनाका वेग नहीं रहता। अधिकतर निठल्ले मनुष्योंके मनोंमें ही बुरे संकल्प उठा करते हैं।

संयमी मनुष्यका मन और इन्द्रियाँ भोगोंकी ओर नहीं जाते। उनमें स्वतः वैराग्यकी भावना जाग्रत् हो जाती है।

सदाचारका आदर करनेवाला न तो दुराचारियोंका सङ्ग करता है, न उस विषयकी बातें सुनता है, न उस प्रकारके दृश्य, खेल-तमाशे, नाटक-सिनेमा ही देखता है। अतः उसके जीवनमें कामवासनाका प्रायः उदय ही नहीं होता।

स्वाध्याय—सद्ग्रन्थोंके अध्ययनसे भगवद्भक्ति, ज्ञान, शम, दम, त्याग, वैराग्य आदिके भाव उठते तथा बढ़ते रहते हैं। ऐसा पुरुष अश्लील तथा कामोत्तेजक साहित्य नहीं पढ़ता।

सेवा करनेवालेको तो इन्द्रिय-सुख-भोगका त्याग सर्वप्रथम करना पड़ेगा। जो दूसरोंसे सुखकी आशा रखता है, अपनी सेवा करवाना चाहता है, वह कैसा सेवक? अतः सेवकके जीवनमें भी कामके लिये स्थान नहीं है।

उपर्युक्त पाँच बातें मनुष्यके जीवनको सुन्दर बनाकर उसे प्रभुके सम्मुख कर देनेवाली हैं। इनके होते ही जीवनमें त्याग और ईश्वर-प्रेमका प्राकट्य स्वतः होता है। उसके फलस्वरूप योग, ज्ञान और प्रभुप्राप्ति अपने-आप हो जाती है।

उपर्युक्त पाँचों गुण मनुष्यमें सत्सङ्गसे आते हैं, अतः सदाचारी तथा संयमी संतोंका सङ्ग और सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये।

अपने सुधारमें मनुष्य सदैव स्वतन्त्र और समर्थ है; अतः उसे कभी निराश नहीं होना चाहिये। जो दोष समझमें आ जायँ, उनको तुरंत हटा देना चाहिये। कमजोरी मालूम हो तो सर्वसमर्थ प्रभुका आश्रय लेकर दुखी हृदयसे करुणापूर्वक उनके सम्मुख विनयके साथ अपना दुःख-निवेदन करना चाहिये।

आपको अपनी दिनचर्याका शीघ्रातिशीघ्र परिवर्तन करके ऐसी दिनचर्याका अवलम्बन करना चाहिये, जिसमें एक क्षण भी व्यर्थकी बातोंके लिये न बचे।

घरके किसी भी कार्यको छोटा नहीं समझना चाहिये। जिसमें घरवालोंको सुख मिले, वह हरेक करनेयोग्य निर्दोष कार्य, जिस प्रकार करना चाहिये, उस प्रकार स्वार्थत्यागपूर्वक सावधानीके साथ पूरा कर दिया जाय तो वह किसी भी बड़े-से-बड़े समझे जानेवाले कार्यसे कम महत्त्वका नहीं है। कर्ममें क्रियाकी प्रधानता नहीं है, भावकी प्रधानता है।

यदि आपको आधुनिक शिक्षा सारहीन मालूम होती है तो फिर समयको व्यर्थ खोना, व्यर्थ कार्योंमें और चिन्तनमें लगाना क्यों अच्छा लगता है? क्या आधुनिक शिक्षा उससे भी अधिक निकम्मी है? मेरी समझसे आपको आपकी आरामतलबीका स्वभाव यानी प्रमाद और आलस्य धोखा दे रहा है। अतः सावधान होना चाहिये।

व्यर्थ चेष्टामें समय न खोकर समस्त समयको साधनमें लगाना चाहिये। मनुष्यजीवन बड़े ही महत्त्वका है, यह इस प्रकार बर्बाद करनेके लिये नहीं मिला है।

आपके नये प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः इस प्रकार है—

( १ ) गायत्री-मन्त्र वैदिक है। किसी भी वैदिक मन्त्रको पढ़नेका और जप करनेका अधिकार द्विजातिको भी बिना यज्ञोपवीतके नहीं है। भगवान्‌की उपासनामें तो सबका अधिकार है। वह हरेक प्रकारसे हरेक मनुष्य कर सकता है, पर वैदिक मन्त्रका पठन-पाठन उसके विधानानुसार होनेपर ही उसमें शक्तिका प्रादुर्भाव होता है।

( २ ) अपनेको शरीर मानकर किसी जाति, गुण, योग्यता, वैभव और अधिकारके सम्बन्धसे मनुष्यमें

बड़प्पनका अभिमान होना स्वाभाविक है। उससे बचनेके लिये अपनेको क्षुद्रातिक्षुद्र और अधम माननेकी बात कही गयी है। यह मान्यता सर्वथा हितकर और आवश्यक है एवं जिन ग्रन्थोंमें अपनेको छोटा न माननेकी बात कही गयी है, वहाँ शरीरसे अलग शुद्ध आत्मस्वरूपमें 'अहंबुद्धि' करके कही गयी है।

इस प्रकार इनका उपयोग समझ लेनेपर दोनों ही विश्वास करने और काममें लाने योग्य हैं। गलतीकी गुंजाइश तो दोनोंमें ही है। यदि अपनेको अधम मानकर मनुष्य निषिद्ध कामोंमें लग जाय और अपने जीवनको अवनत बना ले तो वह मान्यता हितकर नहीं है। वैसे ही अपनेमें बड़प्पनका अभिमान करके दूसरोंको तुच्छ समझने लगे, उनका अपमान करने लगे तथा उनसे घृणा और द्वेष करने लग जाय तो यह और भी अधिक भयानक है। इस रहस्यको समझकर यथावश्यक उचित मान्यता करना ही हितकर और श्रेष्ठ है।

( ३ ) पहले स्नान करके पीछे व्यायाम करे और बादमें दूध पी ले तो दोनों काम बन सकते हैं।

( ४ ) 'सहजाभ्यास' नामकी पुस्तकसे मेरा परिचय नहीं है, अतः उसमें लिखी हुई बातके विषयमें मैं कुछ नहीं कह सकता। यह तो मामूली बात है, आप करके परीक्षा कर लें।

( ५ ) प्रामाणिक माने जानेवाले शास्त्र अनेक हैं और सभीमें गुह्यभाव भरे पड़े हैं, अतः किस-किसका नाम लिखा जाय ? अपना जीवन सुन्दर बनानेके लिये तो एक गीता ही काफी है। ×××

# आस्तिकताकी कसौटी

आस्तिकताकी नींव अर्थात्—'श्रीकृष्ण तो हैं ही',—इस बातका विश्वास कितनी गहराईसे मेरे मनमें स्थान पाये हुए है, इसपर भी विचार प्रत्येक साधक-साधिकाको अवश्य करते रहना चाहिये। परमार्थकी साधना जितनी देर तुम उपासना-मन्दिरमें बैठकर करते रहो—वह तो उत्तम है ही, किंतु जीवनका प्रत्येक क्षण जबतक साधनामय नहीं बन जाता, तबतक साधना अधूरी ही चलती है। इसीलिये व्यवहार-जगत्‌में उतरनेपर भी सावधानीसे मनका विश्लेषण करके आस्तिकताकी नींवको—श्रीकृष्णके अस्तित्वमें विश्वासकी भावनाको—तुम्हें निरन्तर सुपुष्ट बनाते रहना चाहिये।

जो सचमुच श्रीकृष्णसे तादात्म्य-लाभ कर लेते हैं अथवा जो प्रभुकी चिन्मयी गोदमें लाड़ले शिशुकी भाँति निरन्तर खेलते रहते हैं, उनके कण-कणमें सात बातें निरन्तर अभिव्यक्त रहती हैं—

( १ )

स्वप्नमें भी किसी भी प्रतिकूलताकी प्राप्ति होकर उन्हें रंचमात्र भी क्षोभ नहीं होता और यदि क्षोभ होता है, तो समझ लेना चाहिये कि अभी वे आस्तिककी श्रेणीमें नहीं हैं, नहीं हैं। उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं और यह कहना कठिन है कि उनकी आस्तिकताकी नींव नापनेपर कितनी गहराईमें मिलेगी, कितनी सुपुष्ट मिलेगी ?

( २ )

स्वप्नमें भी, जाग्रत्‌की तो बात ही क्या, उन्हें अनुकूलताकी प्राप्तिकी अनुभूति होकर हर्ष-विकार नहीं होता। यदि होता है तो वे आस्तिककी श्रेणीमें नहीं हैं, नहीं हैं, नहीं हैं। उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं और यह कहना कठिन है कि उनकी आस्तिकता अर्थात् श्रीकृष्ण तो हैं ही—इस बातका विश्वास कितनी गहराईसे उनके मनमें स्थान पाये हुए है ?

( ३ )

स्वप्नमें भी, किसी भी निमित्तसे, प्राणीसे, पदार्थसे उन्हें भय नहीं होता। यदि भय होता है

तो समझना चाहिये कि वे अभी आस्तिक भी नहीं बन पाये हैं। उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं। और यह कहना कठिन है कि प्रभुकी गोदमें वे सचमुच शिशु बनकर खेल रहे हैं कि नहीं? अथवा श्रीकृष्णसे आत्यन्तिक तादात्म्यकी स्थिति प्राप्त कर चुके हैं या नहीं और उनकी आस्तिकताकी नींव सचमुच कितनी सुपुष्ट और कितनी गहरी है?

( ४ )

स्वप्नमें भी, किसी भी निमित्तसे, किसी प्राणी या पदार्थपर उन्हें वास्तवमें क्रोध नहीं आता—क्रोधकी लीला-सी—एक अभिनय-सा उनके जीवनमें देखा जा सकता है—और यदि वास्तवमें क्रोध आता है तो वे अभी आस्तिककी श्रेणीमें अवस्थित नहीं हैं। प्रभुकी गोदमें भावनासे भले ही खेलते हों, किंतु सचमुच नहीं खेल रहे हैं। अभी वे अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं। उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं। उनकी आस्तिकताकी नींव बड़ी ही लचड़-पचड़-सी दीख रही है।

( ५ )

स्वप्नमें भी यदि मनमें ऐसी वृत्ति आती हो कि यह वस्तु मेरे पास है तो अवश्य, किंतु इसमें इतना-सा परिवर्धन और हो जाता तो अच्छा रहता, तो समझ लेना चाहिये कि वे सचमुच प्रभुमय नहीं बने हैं। वे सचमुच अभी साधनाके क्षेत्रमें ही हैं। हो सकता है कि काफी उठ चुके हों अथवा मामूली ही उठे हों। आँखें तो उनकी बिल्कुल खुली ही नहीं हैं। वे हैं अन्धे ही, अन्धे ही, अन्धे ही। प्रभुके सर्वत्र होनेपनेके सम्बन्धमें उनका विश्वास भी डगमग ही करता रहता है।

( ६ )

स्वप्नमें भी यदि मनमें अपनापना, परायापना अथवा उदासीनता अर्थात्—

( १ ) यह मेरा है अथवा मेरा मित्र है।

( २ ) यह पराया है अथवा मेरा शत्रु है।

( ३ ) इस व्यक्तिका तो क्या लेन-देन है, यह न मेरी ओर है, न दूसरी ओर है। यह तो उदासीन रहनेवाला है।

—इन तीन भावनाओंका आरोप, किसी भी व्यक्तिके प्रति उनके द्वारा हो ही नहीं सकता और यदि होता है तो समझ लेना चाहिये कि अभी वे सचमुच जीवनकी सर्वोच्च स्थितिसे आत्यन्तिक लाभ नहीं कर पाये हैं अथवा सच्चिदानन्दमय, रसमय प्रभुकी गोदमें 'उनके आत्मस्वरूप शिशु' वे अभी नहीं बन पाये हैं, नहीं बन पाये हैं, नहीं बन पाये हैं। उनकी आँखें अभी नहीं खुली हैं, नहीं खुली हैं। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं। उनकी आस्तिकताकी नींव बहुत ऊपरकी सतहपर है तथा वह कमजोर है।

( ७ )

जिनके अहंकारकी आत्यन्तिक निवृत्ति होकर उसके स्थानपर एकमात्र अनन्त महिमामय प्रभुका ही अस्तित्व रह जाता है अथवा प्रभुकी सच्चिदानन्दमयी गोदीके एक अनिर्वचनीय, अचिन्त्य कहने भरके लिये सच्चिन्मयी अहंतासम्पन्न शिशु बन जाते हैं, उनके मनमें स्वप्नमें भी किसी कामना, वासना, स्पृहाका उन्मेष होता ही नहीं। यदि होता है तो समझ लेना चाहिये कि सचमुच वे अभी साधनाके ही क्षेत्रमें हैं। हो सकता है कि कुछ ऊपर उठ गये हों, अथवा अभी वे इस क्षेत्रमें उतरे ही हों। उनकी आँखें अभी खुली नहीं हैं। वे अभी अन्धे हैं, अन्धे हैं, अन्धे हैं। उनकी आस्तिकताकी नींव ऊपरी धरातलपर है और दुर्बल है।

अब भैया! इन्हीं सातों बातोंपर विचार करते हुए तुम्हें साधनाके क्षेत्रमें निरन्तर ऊपर उठते रहना चाहिये और अपनी आस्तिकताकी नींवको निरन्तर गहरी-से-गहरी, पुष्टसे पुष्टतर, पुष्टतम बनाते रहना चाहिये।
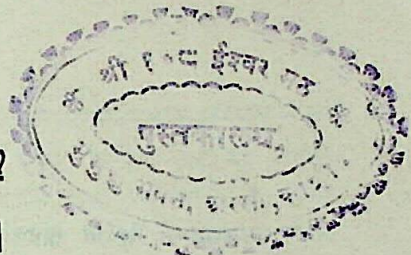
# मनकी हलचलका कारण क्या है ?

[ अनन्तश्री स्वामीजी रामसुखदासजीके प्रवचनसे ]

अपनी 'मनचाहीका न होना' और 'न मनचाहीका हो जाना'—यही मनकी हलचलका कारण है ।

भक्तियोगकी दृष्टिसे शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि तथा 'मैं'पन अपना नहीं है, अपितु सब कुछ भगवान्‌का है । इनको अपना और अपनेको भगवान्‌से अलग मान लेना—इस विपरीत मान्यतासे ही दुःख और मनमें हलचल होती है । हलचल होनेका और कोई कारण नहीं है । जो कुछ होता है, वह हमारे परम सुहृद् प्रभुका मङ्गलमय विधान है । उसमें अपने मनको मैला करना सर्वथा बेसमझी ही है ।

ज्ञानयोगकी दृष्टिसे शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि तथा 'मैं'पन सब कुछ प्रकृतिका है । 'मैं'का आधार परमात्म-तत्त्व है, वह अपना स्वरूप ही है । प्रकृति ही प्रकृतिके गुणोंमें बर्त रही है । ( गीता १३ । २९ ) स्वरूप तो अपने आपमें नित्य स्थित है ही । उसमें क्रिया—करना-कराना सम्भव ही नहीं है । तब फिर हलचल कैसी ?

कर्मयोगकी दृष्टिसे शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि तथा 'मैं'पन अपना नहीं, सब कुछ संसारका है और इनको संसारकी सेवामें ही लगाना है । अपने लिये इनकी आवश्यकता नहीं है । इनको अपना तथा अपने लिये माननेसे ही दुःख और हलचल होती है । यह भूल मिट गयी, फिर दुःख और हलचल कैसे रह सकती है ?

उपर्युक्त दृष्टियोंसे यह बात सिद्ध होती है कि शरीर आदिको चाहे तो भगवान्‌का, चाहे प्रकृतिका और चाहे संसारका मान लो । ये अपने नहीं हैं । इस नित्यसिद्ध बातको न मानकर अपना मानना भूल और बेसमझी है । यही दुःखोंका और हलचलका कारण है । भूल मिटनेके बाद हलचलके लिये किंचित् मात्र भी स्थान नहीं है । फिर तो केवल आनन्द-ही-आनन्द है ।

---

# उत्तराखण्डकी भिखारिन बालिका

सन् १९६७ की बात है । 'मेसर्स जेस्सप एण्ड कम्पनी'के कर्मचारी श्रीरबिन पाल श्रीकेदारनाथ एवं बद्रिकाश्रमकी यात्राके लिये गये । जब वे गुप्तकाशीसे श्रीकेदारनाथकी ओर बढ़ रहे थे तो रास्तेमें एक भिखारिन बालिका उनके समक्ष आयी और बोली—'बाबा ! एक पैसा दो ।' उत्तराखण्डके तपःपूत, शान्त एवं मनोरम वातावरणका श्रीपाल महोदयके मन एवं प्रकृतिपर विशेष प्रभाव हुआ था । भिखारिन बालिकाकी माँगपर उनके मनमें आया—इस बालिकाको एक पैसा क्या दिया जाय, आजके युगमें एक पैसेसे क्या मिलेगा ? ऐसा सोचकर उन्होंने अपना दाहिना हाथ अपने ओवरकोटकी जेबमें डाला और मुट्ठा भरकर पैसे निकाले । इस प्रकारकी तीर्थयात्रामें देनेके लिये यात्रीलोग पैसोंसे अपनी जेब भर लिया करते हैं । श्रीपाल महोदयकी जेब भी केवल पैसोंसे भरी थी । श्रीपाल महोदयने लड़कीके हाथोंमें पैसोंका मुट्ठा उँड़ेल दिया । अपनी माँग स्वीकृत होनेसे लड़कीको प्रसन्नता हुई, पर जब उसने अपने हाथोंमें इतने पैसे देखे तो उसकी प्रसन्नता लुप्त हो गयी । उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी । कुछ दूरपर बच्चे खेल रहे थे । सम्भव है, वे भी भिखारी बालक थे । बालिका दौड़कर उनके पास गयी और उसने प्रत्येक बालकको अपने हाथमें लिये पैसोंमेंसे एक-एक पैसा बाँट दिया । उसने अपने पास केवल एक पैसा रक्खा । बालिकाकी इस उदार निःस्पृह चेष्टासे श्रीपाल महोदयका हृदय भर आया । ( Truth )

---

# सत्संग-वाटिकाके बिखरे सुमन

१–भगवान्का विश्वास साधकके मनमें जहाँ आया, वहाँ वह सदाके लिये निहाल हो गया। फिर उसके प्रत्येक काममें यह विश्वास सहायक होता है। परंतु विश्वास होना चाहिये सच्चा और हर हालतमें अडिग तथा विश्वासमें व्यभिचार—दूसरे विश्वासका मिश्रण—नहीं होना चाहिये।

२–भगवान्को छोड़कर किसी भी दूसरेकी आशा करना, दूसरेपर विश्वास करना—यही जीवकी जडता है, इसीसे जीव दुखी हो रहा है। इस जडताको मिटाना चाहिये।—'और आस बिसवास भरोसो हरौ जीव जड़ताई।'

३–भगवान्के आधारपर जीवन रहे; अन्य कोई भी आधार न रहे। हमलोगोंने तो और-और न जानें कितने आधार बना रक्खे हैं। भगवान् कहते हैं—'इन सब आधारोंको छोड़कर एकमात्र मुझे ही आधार बनाओ—'मामेकं शरणं व्रज।'

४–भगवान्के शरणागत हो जानेपर दो बातें निश्चितरूपसे अवश्य आती ही हैं—निर्भयता और निश्चिन्तता। भगवान्के शरणापन्न होनेपर—विश्वासपूर्वक भगवान्के चरणोंपर अपनेको डाल देनेपर किसी भी हालतमें भय नहीं रहता। यदि आश्रय लेनेपर भी भय बना है तो या तो हमने आश्रय लिया नहीं है, अथवा जिनका आश्रय लिया है, वे भगवान् नहीं हैं।

५–विश्वासपूर्वक भगवान्के शरणापन्न हो जाओ, फिर मौज करो। जैसे बच्चा माँकी गोदमें आ जाय तो उसकी सब चिन्ता माँ करती है, भगवान् भी शरणापन्न भक्तकी सब चिन्ता स्वयं करते हैं।

६–'शरणापन्न भक्तको कर्म करना चाहिये कि नहीं?' इस प्रश्नका उत्तर यह है कि वह अथक रूपसे कर्ममें रत रहता है, पर उसके कर्म करनेके भावमें अन्तर रहता है। जो भगवान् उसपर इतनी कृपा करते हैं कि उसकी सब चिन्ता वे स्वयं रखते हैं, उनके प्रति उसका हृदय इतना कृतज्ञ रहता है कि जीवमात्रमें अभिव्यक्त उन भगवान्की सेवा करनेसे वह कभी थकता नहीं।

७–पुरुषार्थका सम्मान करना चाहिये और उसका सेवन भी करना चाहिये, पर कर्तव्यके भावमें, उसपर निर्भर न होकर। भगवान्ने कहा है—'अनन्यचित्तसे मेरा चिन्तन करनेवाले भक्तका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।' दूसरेसे कहकर भक्तका काम करवा देंगे, जैसे धनी व्यक्ति नौकरोंकी व्यवस्था करके दूसरोंकी सेवा करवा देते हैं, यह बात नहीं। भगवान् स्वयं भक्तका कार्य सम्पन्न करते हैं। भगवान्की इस घोषणापर विश्वास करके भगवान्की प्रसन्नताके लिये पुरुषार्थ करें, न कि पुरुषार्थका भरोसा करके। भरोसा तो एकमात्र भगवान्का ही रहे!

८–जगत्की कोई वस्तु चिन्ताका शमन नहीं कर सकती, बल्कि वह चिन्ताको बढ़ाती है—हम सबका यह अनुभव है, कोई दुराग्रहसे इसे न माने तो उसकी मूर्खता है। पर भगवान्पर विश्वास होनेसे निश्चिन्तता आ ही जाती है; क्योंकि विश्वासी भक्तको दीखता है कि भगवान् स्वयं मेरी सँभाल कर रहे हैं। भगवान् जिसकी सँभाल करें, उसके लिये फिर क्या कमी रह सकती है?

९–भगवान्का भक्त किसी प्राणी, पदार्थ अथवा परिस्थितिको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं रखता। भगवान् उसे जिस परिस्थितिमें रखते हैं, वही उसके लिये परम मङ्गलमय है। यदि भगवान् मृत्युमें उसके लिये मङ्गल समझते हैं तो उसे मरनेसे भय नहीं, यदि वे जीवित रखनेमें मङ्गल समझते हैं तो उसे जीवित रहनेमें कोई आपत्ति नहीं। अमुक वस्तुकी प्राप्तिमें भगवान् उसके लिये मङ्गल समझते हैं तो उसे उस वस्तुको लेनेमें इन्कार नहीं और अमुक वस्तुकी अप्राप्तिमें मङ्गल समझते हैं तो वह वस्तु चाहे कभी न मिले। बस, उसकी तो एक ही कामना रहती है—'नाथ! मेरे लिये वही कीजिये, जिसमें आप मेरा मङ्गल समझते हैं।'

१०–भगवान्का विश्वास खरीदनेसे नहीं मिलता; यह बाजारकी चीज नहीं है और न यह बाहरी क्रियाका फल ही है। यह तो स्वाभाविक ही भगवान्की कृपासे भगवान्के प्रति भाव उत्पन्न होता है। पर इसके लिये चाह अवश्य होनी चाहिये। भगवद्विश्वासकी चाह भक्तके हृदयमें भगवद्विश्वासकी प्रतिष्ठा कर देती है।

११–भगवान्की चाह उत्तम है, पर भगवान्के विश्वासकी चाह और भी उत्तम है तथा प्रेमकी चाह उससे भी उत्तम है। वस्तुतः भगवत्प्रेमकी चाह ही सर्वोत्तम है।

१२–विश्वास कर लीजिये—'हम भगवान्‌के हो गये, उन्होंने हमें अपना लिया। अब यदि सुधार अवशेष है तो वे करें।' बस, आपका काम बन गया। विश्वासी भक्त कभी अपनी ओर नहीं देखता। उसके मनमें यह भाव प्रतिष्ठित रहता है कि 'हम मैले-कुचैले जैसे हैं, भगवान्‌के हो गये हैं, उन्होंने हमें अपना लिया है। अब वे हमारी गंदगी-को नहीं धोते तो वे जानें। अब उनके हो जानेपर हम गंदे नहीं रह सकते।' जहाँ यह भाव प्रतिष्ठित हुआ कि भगवान्‌का सम्पर्क हुआ और फिर सारी गंदगी सदाके लिये विलीन हो गयी।

१३–विश्वास करें—भगवान् नित्य हमारे साथ हैं, वे कभी हमारा साथ छोड़ नहीं सकते। नरकके कीड़के आत्मा-रूपमें भी जब भगवान् उसके साथ रहते हैं तो हम कैसे भी क्यों न हों, उनकी संनिधिपर अविश्वास क्यों करें ?

१४–साधकको चाहिये कि अपनी ओरसे त्रुटि अथवा बेईमानी न करे। जितना अपनेसे बन सके, तन-मनसे करता रहे और विश्वास रक्खे कि जो कुछ होगा, उनकी कृपासे ही, उनकी कृपाके बना कुछ हो जायगा, यह कभी सम्भव नहीं।

१५–साधकको चाहिये कि भगवान्‌की कृपाका भरोसा करके वह निश्चिन्त रहे। वह अपने मनकी कल्पनाके अनुसार भगवान्‌की कृपाकी जाँच करना चाहेगा तो वह कभी भी भगवान्‌की कृपाका रहस्य नहीं समझ सकेगा। बाहरी परिस्थिति, बाहरी क्रिया, बाहरी वस्तुके द्वारा भगवान्‌की कृपाकी जाँच नहीं हो सकती। यह तो हृदयकी वस्तु है। हृदय ही भगवान्‌की कृपाकी अनुभूति कर सकता है।

१६–भगवान्‌की कृपापर यदि हम विश्वास करें तो स्वयं भगवान् आकर हमें अपने साथ अपने धाममें ले जायँ, हमें उनके पास जाना नहीं पड़े। जो कमी हो रही है, वह विश्वासकी ही है।

१७–लोकमें देखते हैं—बुद्धिमती एवं स्नेहमयी माँ बच्चेका सारा काम स्वयं करती है, सुचारुरूपसे। बच्चा आगकी ओर झाँकता है तो उसकी चिन्ता माँ करती है; क्योंकि वह माँपर निर्भर है। अब सोचिये, अनन्त-अनन्त माताओंके हृदयका वात्सल्य जिन भगवान्‌के हृदयवात्सल्य-समुद्रके एक बूँदके बराबर भी नहीं है, वे भगवान् क्या हमें कभी भूल सकते हैं ?

१८–हमें साधन करना चाहिये, पर यह साधन भगवान्‌की कीमत है, इसके द्वारा हम भगवान्‌को खरीद लेंगे, ऐसा कभी नहीं मानना चाहिये। कोई भी साधन भगवान्‌की कीमत नहीं है। सारा भरोसा भगवान्‌की कृपाका ही करना चाहिये। वस्तुतः भगवान् अपनी कृपासे ही मिलते हैं।

१९–कौसल्या-दशरथ, यशोदा-नन्द आदिमें वात्सल्य, कोसल तथा व्रजके सखाओंमें सख्य, पटरानियों तथा गोपाङ्गनाओंमें विभिन्न रतिकी मधुर भक्ति थी। इसीका नाम रागात्मिका भक्ति है। अर्थात् भगवान्‌के साथ कोई सम्बन्ध जोड़कर उस सम्बन्धकी जैसी आसक्ति होती है, उस आसक्तिके अनुसार चित्तका भगवान्‌में सर्वथा परम अनुरक्त हो जाना 'रागात्मिका' भक्ति है। इस रागात्मिका भक्तिका अनुकरण करके—भगवान्‌के साथ कोई सम्बन्ध जोड़कर जो भक्ति की जाती है, उसे 'रागानुगा' भक्ति कहते हैं। यही प्रेमलक्षणा भक्ति है। परम अनुरक्ति ही इसका स्वरूप है।

२०–प्रेमका भाव नित्य है। यह अनुभवकी वस्तु है, वाणीकी नहीं। अनुभवमें नित्य नवीनता रहती है, वाणी-द्वारा कथन करनेपर उसमें पुनरावृत्तिका अनुभव होता है।

२१–जबतक जगत्‌के किसी प्राणी-पदार्थमें कहीं कुछ भी 'मेरा' रहता है, तबतक भगवच्चरणोंमें प्रेम नहीं है।

२२–जबतक जगत्‌में कोई 'मेरा' है, तबतक गोपीप्रेम-की बात क्या की जाय ? केवल एक श्रीश्यामसुन्दर ही मेरे और मैं केवल श्यामसुन्दरका ही, इस अनन्यभावको लेकर श्रीकृष्णसे जो नित्य सम्बन्ध हो जाता है, वह है गोपीप्रेम।

२३–संतका प्रभाव अपार है। संत चाहे उपदेश न करे, चाहे वह छिपकर रहे, चाहे वह अज्ञातवास करे, उसकी स्थितिमात्र समाजके लिये, देशके लिये, विश्वके लिये परम कल्याणकारिणी है। संतके अंदर जो भगवत्-परमाणु हैं, वे बिखरकर यथायोग्य न्यूनाधिकरूपमें सबका सहज कल्याण करते हैं।

२४–भगवान् ही सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के रूपमें अभिव्यक्त हैं, अतएव कभी किसीसे भी दुर्व्यवहार न करे। सबमें भगवान्‌को अनुभव कर जो यथायोग्य व्यवहार करेंगे, वह निर्दोष होगा। भगवान्‌को भूलकर, आत्मभावना-को भूलकर, जो व्यवहार होता है, उसमें दोष आ ही जाता है; क्योंकि उससे कहीं राग हो जाता है तो कहीं

द्वेष । इसलिये सबको भगवान्‌की अभिव्यक्ति समझकर, सबमें भगवान्‌को समझकर अथवा सबको भगवान् ही समझकर सबका सम्मान करना चाहिये; अपने प्रत्येक कर्म-के द्वारा सबकी पूजा करनी चाहिये—उनका हित-सुख सम्पादन करना चाहिये । ऐसा करनेसे भगवान् संतुष्ट होंगे और मानव-जीवन सफल हो जायगा ।

२५—मलमें भरा बच्चा रोता है । वह माँका नाम लेकर नहीं पुकारता, पर वह मातृपरायण है । माँ नहीं कहती कि तुम नहा-धोकर आओ, तब लूँगी । वह दौड़ती है और बच्चेको धो-पोंछकर छातीसे लगा लेती है । भगवान्‌के परायण होनेवाले भक्तको भगवान् स्वयं स्वच्छ निर्मल करके हृदयसे सटा लेते हैं । वे उसे कभी नहीं कहते कि पहले तुम शुद्ध होकर आओ, तब हृदयसे लगाऊँगा । पर होना चाहिये बच्चेकी भाँति भगवत्परायण ।

२६—जहाँ अधिक दौर्बल्य है, अपवित्रता है, वहाँ भगवान्‌का अधिक प्यार है । पर उस प्यारको अनुभव करना, यह जीवका काम है ।

२७—भगवान्‌की शरणागतिमें यह प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं कि हम पापमुक्त होंगे, तब भगवान्‌की शरण ग्रहण कर सकेंगे । जब जिस समय शरणागत होनेकी अभिलाषा जाग्रत् हो, तब उसी समय—'नाथ ! हम जैसे हैं, तुम्हारे हैं; हमारे पास जो कुछ पाप-पुण्यकी सम्पत्ति है, 'सब तुम्हारी है !'' 'पुकारकर शरण ग्रहण कर लें । भगवान् सदा अपनानेको प्रस्तुत हैं ।

२८—अपने दैन्यका विश्वास और भगवान्‌की कृपाके महत्त्वका विश्वास—जहाँ दोनों मिल जाते हैं, वहाँ काम बन जाता है । यह सारे पापोंका ध्वंस करनेवाला तत्त्व है । इसलिये यह प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं कि 'कब पाप नाश हों और कब हम भगवान्‌के शरणापन्न हों ।'

२९—भगवान् जीवके पूर्वका इतिहास नहीं देखते, भगवान् जीवके पिछले पापोंके लिये आँख मूँद लेते हैं । वे देखते हैं, वर्तमानके हृदयको; उसमें सच्ची अनन्य चाह है तो भगवान् कह देते हैं—'तू मेरा हुआ । तेरे पाप मैं धो डालूँगा । तू निश्चिन्त हो जा ।'

३०—साधकको चाहिये कि अपना इष्ट, अपना गुरु, अपनी साधन-प्रणाली—ये तीन कभी न बदले । कभी किसी दूसरेका खण्डन न करे और अपनी तीनों बातें अपने लिये सर्वोच्च माने । इनका बदलना 'व्यभिचार'का लक्षण है ।

३१—गुरुने जो मार्ग बताया है, उस मार्गपर चलता रहे । ध्येय सच्चा है तो भगवान् सहायक होते हैं ।

३२—साधनामें आसन, स्थान, काल, मन्त्र, माला आदि सबकी विशेषता है । ये बार-बार बदले जायँ तो इनकी शक्ति क्षीण होती है ।

३३—साधकको चाहिये कि जिस मार्गको पकड़े, उसमें सर्वोपरि बुद्धि रक्खे ।

३४—पतिव्रता स्त्री पराये पुरुषके गुणोंको क्यों सुने ? उसके लिये तो उसका पति ही सर्वोपरि है । अतएव जिस साधनका साधक हो, उसे उतनी ही बात सुननी चाहिये, जो उसके साधनमें सहायक है । पर दूसरे साधनोंके प्रति कभी हेय-बुद्धि न करे ।

३५—भगवान्‌के विश्वासके पाँच स्वरूप हैं—

१—भगवान् हमसे अधिक बुद्धिमान् हैं ।
२—भगवान्‌से कभी भूल नहीं होती ।
३—हमारा भला किसमें है, इसे भगवान् जानते हैं ।
४—भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं । सब कुछ करनेमें समर्थ हैं ।
५—भगवान् हमारे सुहृद् हैं ।

—जहाँ भगवान्‌पर विश्वास, श्रद्धा, भक्ति है, वहाँ भक्त भगवान्‌से यही प्रार्थना करता है—'नाथ ! आप जो चाहते हैं, वही हो ।' अपनी सारी चाह वह भगवान्‌की चाहमें मिला देता है ।

३६—हम भगवान्‌के हाथके खिलौने बन जायँ, वे अपनी लीला-सामग्री बना लें हमको—बस, यही साध्य हो हमारा । अब भी हम बाध्य हैं भगवान्‌का किया हुआ विधान माननेके लिये, पर यह होता है कानूनन । किंतु जब हम उनके हाथका खिलौना बन जाते हैं, तब हमारे द्वारा उनकी लीला सम्पन्न होती है ।

३७—प्रेमस्वरूप भगवान्‌के सुखकी सामग्री बन जाना प्रेमीका स्वभाव है । यदि न मिलना भगवान्‌को सुखदायी है तो प्रेमी उनके अमिलनकी आकाङ्क्षा करता है । यदि संसारमें उसके पददलित, निन्दित होनेमें प्रेमास्पदको सुख

मिलता है तो वह सदा पददलित, निन्दित होते रहना चाहता है ।

३८–जहाँ-जहाँ कामना है, वहाँ-वहाँ मधुरतामें विषका मिश्रण है । मोक्षकी इच्छा भी मधुर-भावमें विष ही है । मधुर भावमें न तो कामनाका कलङ्क है, न अहंकी मङ्गला-काङ्क्षा है ।

३९–वैराग्यकी परम भूमिकापर प्रेमी नाचता है । जहाँ वैराग्यकी परम भूमिका है, वहीं प्रेम देवता आते हैं ।XXXX भगवत्प्रेममें जगत्का वैराग्य स्वाभाविक है । भगवत्प्रेम-रसमें डूबा हुआ प्रेमी जगत्के सम्पूर्ण विषय-भोगोंके प्रति सहज वैराग्यवान् होता है । जहाँ विषयानुराग, जगदनुराग ही नहीं, पर मोक्षानुराग भी है, वहाँ भी भगवत्प्रेम प्रकट नहीं होता ।

४०–'सर्वात्म-निवेदन'में जबतक निवेदन करनेवाला अलग रहता है, तबतक 'सर्वात्म-निवेदन' पूर्ण नहीं होता । 'सर्वात्म-निवेदन'में निवेदन करनेवाला खो जाता है ।

४१–भगवान्की चाह—प्रेमास्पदकी अनन्य चाह जब उत्पन्न हो जाती है, तब यह जगत् नहीं रह जाता, केवल रह जाते हैं—भगवान् या प्रेमास्पद ।

४२–मधुर भावमें जहाँ साधना अत्युच्च कोटिमें पहुँचती है, वहाँ साधक और साध्यका भेद मिटने लगता है और जहाँ यह भेद मिट जाता है, उस स्थितिका वाणीद्वारा कथन नहीं हो सकता । वह स्थिति अनिर्वचनीय है; वह अनुभूतिकी वस्तु है । वह अचिन्त्य, चित्तद्वारा चिन्तनकी वस्तु भी नहीं है । व्रजकी साधनाका यही स्वरूप है—वहाँ प्रेमी प्रेमास्पद हो जाता है और प्रेमास्पद प्रेमी ।

४३–पित्तके रोगीकी जीभ कड़वी होती है । उसे मिश्री भी कड़वी लगती है । पर मिश्री पित्तको शमन करनेकी दवा है, इस नाते मिश्री खाना आरम्भ कर दें—मिठासके लिये नहीं—तो जैसे-जैसे पित्तका शमन होगा, वैसे-ही-वैसे जीभका कड़वापन भी मिटता जायगा । फिर मिश्री तो मीठी है ही । इसी प्रकार भगवान्का नाम यदि मीठा न भी लगे तो दवाकी भाँति उसे लेते रहो । हृदयका मल ज्यों-ज्यों नष्ट होगा, त्यों-ही-त्यों नाममें रुचि उत्पन्न होती जायगी । अन्तर्मलके नाशके लिये भगवान्का नाम सर्वोपरि मधुरतम साधन है ।

४४–साधकको चाहिये कि वह व्यर्थका बोलना बंद कर दे और उठते-बैठते, चलते-फिरते, शुद्धि-अशुद्धिमें जीभसे बराबर भगवान्का नाम लेता रहे । अपने जिम्मेका काम सब करे, पर कामभरको बोले और जीभको लगाये रक्खे—भगवान्के नाम-जपमें । व्यर्थ बोलना बंद कर देनेसे चार लाभ होते हैं—झूठ छूटता है, परनिन्दा छूटती है, व्यर्थकी चर्चा छूटती है तथा वाणीमें शक्ति आती है ।

४५–साधकको चाहिये कि जो कुछ करे भगवान्की सेवाके भावसे, जो कुछ बोले भगवान्के गुणानुवादकी भावनासे और जो कुछ सोचे भगवान्के सम्बन्धसे ।

४६–भगवान् दुर्लभ नहीं हैं, भगवान्की प्राप्तिके लिये संतापका जगना ही दुर्लभ है । इसे ही जगाना चाहिये । भगवान्की प्राप्तिका संताप क्या है ?—भगवान्का अमिलन, भगवान्का विछोह, भगवान्के अमिलनमें बीतनेवाला एक-एक निमेष युगके समान अनुभव हो ।

४७–कूड़ेमें आग डाल दी जाय तो कूड़ा आग बन जाता है । भगवान्की प्राप्तिकी आग हृदयमें जला ली जाय, यह परम साधन है । आग उत्पन्न हुई कि वह सम्पूर्ण तृष्णाओंको, सम्पूर्ण कामनाओंको, सम्पूर्ण मलिनताओंको जला डालेगी और हृदय भगवत्स्वरूप हो जायगा—भगवान् उसमें आकर बस जायँगे ।

४८–यदि हम सच्चे हृदयसे भगवान्को पुकारते हैं तो भगवान्का हृदय हमको पुकारता है । हम जिस प्रकार भगवान्को चाहते हैं, उसी प्रकार भगवान् हमको चाहते हैं । पर हमारी और भगवान्की शक्ति अलग-अलग है । उदाहरण-रूपमें—यदि चींटी और गरुडजीमें मैत्री हो जाय और यह शर्त भी तय हो जाय कि जैसे एक चलेगा वैसे दूसरा भी, तो चींटीके एक पैर बढ़ानेपर गरुडजी अपना एक पैर बढ़ायेंगे । गरुडजीके पैरके सामने चींटीके पैरकी क्या तुलना है ? दोनोंकी गतिका विचार करें, कोई अनुपात नहीं । ठीक इसी प्रकार भक्तके मनमें संकल्प हो—'भगवान् मिलें' तो उधर भगवान्के मनमें भी संकल्प होता है 'भक्त मिले' । भगवान्का संकल्प और उसकी सिद्धि दो नहीं होते । बस, भगवान्में संकल्प उदय होते ही भक्त निहाल हो जाता है । अतएव भक्तको चाहिये कि अपने हृदयमें यह अनन्य संकल्प उत्पन्न करे कि 'भगवान् मिलें' ।

४९–भगवान्के साथ जो सम्बन्ध जोड़कर हम भगवान्-

को अपना मानेंगे, भगवान् उसी सम्बन्धके साथ हमारे साथ जुड़ जायँगे—यह सुनिश्चित है। हम संतान हैं, भगवान् माता हैं; हम पुत्र हैं, वे पिता हैं; हम धनके लोभी हैं, वे हमारे धन हैं। कोई सम्बन्ध ऐसा नहीं कि जिस सम्बन्धमें भगवान् हमारे साथ नहीं रह सकते।

५०—भगवान्की कृपापर भरोसा करके—'जैसे भी हम हैं 'भगवान्के हैं,' 'जगज्जननी माँकी गोदके बच्चे हैं'—इस विश्वासके साथ अपने आपको भगवान्का स्नेहभाजन मान लें। स्नेहभाजन स्नेहीके दोषोंको नहीं देखता, यह जगत्का व्यवहार है, तब क्या जगज्जननी माँ हमारे दोषोंको देखेगी? भगवान्के मनमें भक्तके दोषोंकी कभी कल्पना भी नहीं हो सकती।
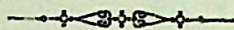
# पाश्चात्य जगत्में श्रीकृष्णभक्तिका विस्तार

## 'हरे कृष्ण हरे राम'की तुमुल ध्वनि

### ( अमेरिका, यूरोप, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा जापानमें २५ श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर )

### [ श्रीकृष्ण-भावना-प्रसारक अन्ताराष्ट्रिय संघ ]

### ( International Society for Krishna Consciousness )

गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्य महात्मा श्रीभक्तिसिद्धान्तजी महाराजके एक विद्वान् शिष्य श्रीभक्तिवेदान्तजी सन् १९६५ में अमेरिका गये थे। उनके पास पूँजी थी—'श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवकी महती कृपा, गुरुकृपा, श्रीमद्भागवत तथा श्रीमद्भगवद्गीता एवं अखण्ड अनन्त दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवत्स्वरूपाभिन्न श्रीभगवन्नामकी परम आश्रयता।' उन्होंने वहाँ न्यूयार्कमें कथा आरम्भ कर दी और कभी-कभी संध्याके समय टाम्पकिन ( Tompkin ) पार्कमें वे 'हरे कृष्ण' मन्त्रका मधुर कीर्तन करने लगे। तरुणवर्ग आकर्षित हुआ। कवि गिन्सवर्ग मिलने आने लगे। इनके संकीर्तनकी लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। नाम-संकीर्तनसे भगवद्भावकी प्रवाहिनी-सी बह चली। लोगोंमें नामोन्मादका प्रादुर्भाव होने लगा। कवि गिन्सवर्गके कथनका सारांश है—''यह संकीर्तन भावोन्मादकी स्थिति उत्पन्न कर देता है। संकीर्तनकी स्वर-ध्वनिसे बलात् मानो यौगिक क्रिया होने लगती है। इस संकीर्तनमें ऐसी मादकता है कि अन्य तमाम मादक द्रव्योंसे पिण्ड छूट जाता है। 'हरे' 'कृष्ण' 'राम' नाम ही ऐसा विलक्षण है।'' ओहियो राजकीय विश्वविद्यालयके अंग्रेजीके प्राध्यापक श्रीहावर्ड एम. ह्वीलर, जिन्होंने अपना पूरा जीवन ही श्रीकृष्णसेवाके लिये समर्पित कर दिया है, कहते हैं कि 'मैं स्वयं पिछले दो वर्षोंमें एल० एस० डी० की पचास खूराक तथा एक-एक दर्जन पियोटे ( Peyote )—जैसे मादक द्रव्योंका सेवन कर चुका हूँ, पर अब नामकी मादकताने सबको छुड़ा दिया है। अब कभी कुछ भी नहीं लेता।'

स्वामीजीने पहले न्यूयार्कमें एक केन्द्रकी स्थापना की। नाम रक्खा गया—'श्रीकृष्णभावना-प्रसारक अन्ताराष्ट्रिय संघ' ( International Society for Krishna Consciousness ).

युवक-युवतियोंका आकर्षण बढ़ता गया और धीरे-धीरे शाखाएँ खुलती गयीं। इस समय तक अमेरिका, इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, कनाडा, आस्ट्रेलिया और जापानमें—कुल मिलाकर पचीस मन्दिर स्थापित हो चुके हैं। इन मन्दिरोंमें श्रीबलरामजी और श्रीसुभद्राजीके साथ भगवान् जगन्नाथजीकी तथा भगवान् राधाकृष्णकी पूजा भारतीय वैष्णव-पूजा-पद्धतिके अनुसार होती है। अपने गुरु महाराजकी आज्ञाके अनुसार पहले श्रीजगन्नाथजीकी पूजा आरम्भ की जाती है। प्रायः सभी मन्दिरोंमें भगवान् जगन्नाथ और श्रीचैतन्यमहाप्रभुके संकीर्तनके चित्र हैं। फिर क्रमशः प्रत्येक मन्दिरमें श्रीराधाकृष्णके विग्रहोंकी स्थापना होती जा रही है। भारतवर्षसे बहुत-सी सुन्दर मूर्तियाँ स्थापनार्थ जा चुकी हैं। अभी और भी मूर्तियोंकी आवश्यकता है। कोई सज्जन भेजना चाहें तो वे स्वामीजीसे पत्र-व्यवहार करके जानकारी

कर लें कि किस आकारकी कैसी मूर्ति चाहिये। उनका पता नीचे दिया गया है।

इस समय स्वामीजीके हजारों अमेरिकन तथा यूरोपियन दीक्षित शिष्य हैं। अदीक्षित भक्तोंकी संख्या तो बहुत अधिक है और दीक्षित-अदीक्षित दोनोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है। इनमें वकील, अध्यापक, सामाजिक कार्यकर्ता, विद्यार्थी—सभी श्रेणीके लोग हैं। ये सभी प्रायः सच्ची भावनावाले लोग हैं। स्वामीजीका वैष्णव सदाचारपर बड़ा जोर है, जिससे शारीरिक-मानसिक अनैतिकता नष्ट हो रही है और जीवन पवित्र होता जा रहा है।

प्रत्येक पुरुषको धोती, महिलाको साड़ी—भारतीय वेश-भूषाके अनुसार पहननी पड़ती है। पुरुष पीले गेरुवे रंगके वस्त्र धारण करते हैं। सिरका मुण्डन कराते हैं। शिखा ( चोटी ) रखते हैं। हिंदू नाम-जसे—दामोदरदास, भगवानदास आदि। स्त्रियोंके गोपिकादासी, दीनदयार्द्रदासी आदि रख दिये जाते हैं। मस्तकपर सभी गोपीचन्दनका तिलक लगाते हैं।

**नियम हैं—प्रातः चार बजे उठना, दिनमें दो बार स्नान करना, भगवान्‌की नियमित पूजा करना, हरे कृष्ण आदि १६ नामोंकी १६ मालाका प्रतिदिन जप करना और प्रातःकाल तथा सायंकालके सत्संगमें अनिवार्यरूपसे उपस्थित होना।**

**१. किसी भी मादक वस्तुका यहाँतक कि चाय, काफी, सिगरेटका भी सेवन न करना।**

( No addiction to or indulgence in any form of intoxication, including coffee, tea and cigarettes. )

**२. मांस, मछली, अण्डा आदिका सेवन कदापि न करके पूर्णतया शाकाहारी भोजन करना।**

( No eating of meat, fish or egg. Must be strictly Vegetarian. )

**३. विवाहित दाम्पत्य जीवनके अतिरिक्त अवैध यौन-सम्बन्धका त्याग।**

( No illicit sexual relationship. )

**४. जूआ या मानसिक हवाई किले बनानेसे दूर रहना।**

( No gambling or mental speculation. )

**५. अभक्तोंके साथ अत्यधिक सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।**

( Should not extensively mix with non-devotees. )

**६. अभक्तोंके द्वारा बनाया हुआ भोजन नहीं करना चाहिये।**

( Should not eat food cooked by non-devotees. )

**७. व्यर्थकी बातचीतमें समय नहीं खोना चाहिये।**

( Should not waste time in idle talks. )

**८. सारहीन खेल-तमाशोंमें सम्मिलित नहीं होना चाहिये।**

( Should not become engaged in frivolous sports. )

**९. निरन्तर भगवान्‌के पवित्र नामोंका जप-कीर्तन करते रहना चाहिये।**

( Should always chant and sing the Lord's Holy Names. )

दस नामापराधोंसे बचनेकी भी शिक्षा दी जाती है। नामापराध ये हैं—

१. भगवान्‌के भक्तकी निन्दा।

२. भगवान् तथा उपदेवताओंको समान समझना अथवा अनेक भगवान् मानना।

३. पारमार्थिक गुरुकी आज्ञाओंकी अवहेलना करना।

४. धर्मशास्त्रोंके महत्त्वको सीमित करना।

५. भगवान्‌के पवित्र नामको अर्थवाद बताना।

६. भगवन्नामके बलपर पाप करना।

७. अश्रद्धालु लोगोंके सामने भगवन्नामकी महिमाका उपदेश करना।

८. भौतिक सदाचारके साथ पवित्र भगवन्नामकी तुलना करना।

९. पवित्र नाम-जपके समय उसमें प्रीतिरहित रहना।

१०. नामजप-कीर्तनके समय जागतिक विषय-भोगोंमें आसक्ति रखना।

भक्तमें ये २६ सद्गुण आवश्यक हैं—

१–हर-एकके प्रति दयालु, २–किसीसे झगड़ा न करना, ३–परम सत्यमें प्रतिष्ठा, ४–सबके प्रति समताका भाव, ५–निर्दोष, ६–दानशील, ७–मृदु, ८–स्वच्छ, ९–सरल ( कपटहीन ), १०–उदार, ११–शान्त, १२–श्रीकृष्णके प्रति पूर्णतया आसक्त, १३–सांसारिक कामनासे शून्य, १४–विनीत, १५–धीर, १६–आत्मनिग्रही, १७–मितभोजी, १८–विवेकशील, १९–आदरपूर्ण, २०–दीन ( अभिमानशून्य ), २१–गम्भीर, २२–करुणार्द्र, २३–मैत्रीपूर्ण, २४–काव्यमय, २५–दक्ष और २६–मौन।

कलियुगमें भगवत्प्रीति या भगवत्प्राप्तिका प्रधान साधन भगवन्नामजप तथा कीर्तन ही माना गया है। यहाँ इसीका उपदेश तथा आचरण किया-कराया जाता है। सभी भक्त नाम-जप करते हैं, अखण्ड कीर्तनके आयोजन होते हैं। नगर-कीर्तन सर्वत्र रोज ही किया जाता है।

जिस समय पवित्र भगवद्भावमें निमग्न पुरुषों तथा महिलाओंके दल ( पुरुष ) पवित्र गेरुआ वस्त्र तथा ( स्त्रियाँ ) साड़ी पहने, शुभ्र तिलक लगाये, पुरुषगण अपने मुण्डित सिरोंपर शिखा लटकाये, सभी गलेमें तुलसीकी कण्ठी पहने, हृदयपर भगवन्नाम-जपमालाकी झोली झुलाये, नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहाते हुए, ऊर्ध्वदृष्टि तथा ऊर्ध्वबाहु किये अमेरिका तथा यूरोपके वर्तमान भोगप्रधान नगरोंकी सड़कोंपर उन्मत्त नृत्य करते निकलते हैं,—उस समय उन्हें देखकर वहाँके नर-नारी चकित रह जाते हैं, उनके मस्तक श्रद्धासे झुक जाते हैं, हृदय द्रवित हो जाते हैं और बरबस वे भी नामकीर्तन करने लगते हैं।

अमेरिकाके लोग तो इनके कीर्तनसे बहुत ही प्रभावित हैं। लन्दनके कीर्तनके सम्बन्धमें 'टाइम्स आफ लन्दन' ( Times of London ) में एक लेख छपा था—लिखा था 'हरे-कृष्ण-कीर्तनने लन्दनको चकित कर दिया।' (Hare Krishna Chant Startles London.)

स्वामीजी गीता तथा श्रीमद्भागवतका नियमित उपदेश करते हैं। लोगोंकी शङ्काओंका मौखिक तथा लिखित उत्तर भी देते हैं। पुस्तकें भी लिखते हैं। इनकी एक पुस्तक 'कृष्ण' जापानमें छप रही है, जिसके लिये इनके एक अदीक्षित भक्त प्रसिद्ध अंग्रेज संगीतज्ञ श्रीजार्ज हरीसनने १९००० पाउण्ड दिये हैं।

'ईश्वरकी ओर मुड़ो' ( Back to Godhead ) नामक पत्र अंग्रेजी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषामें निकलते हैं, जिनमें सदाचार, भक्ति तथा उच्च पारमार्थिक विचारोंके लेख, महाभारत तथा भागवतकी कथाएँ, श्रीमद्भगवद्-गीताके उपदेश और धार्मिक भारतीय चित्र रहते हैं।

श्रीस्वामीजी महाराज, जिन युवकोंका विवाह नहीं हुआ है, उनको ब्रह्मचर्य-व्रतपर दृढ़ रहनेकी शिक्षा देकर उन्हें श्रीकृष्ण-सेवामें लगाते हैं। जो युवक-युवती विवाह करना चाहते हैं वे पहले अपने गुरु-भाइयोंकी राय लेते हैं, फिर स्वामीजीसे आज्ञा प्राप्त करते हैं। वे युवक-युवती अपनी प्रसन्नता तथा सुखके लिये विवाह करना नहीं चाहते। वे एक सूत्रमें बँधकर भगवान् श्रीकृष्णकी और भी अच्छी सेवा करना चाहते हैं। गुरुजी उनके नाम बदल देते हैं और हिंदू-पद्धतिसे देवता तथा अग्निकी साक्षीमें गठबन्धन कराके विवाह-संस्कार कराते हैं। न कोर्टशिप होती है, न रजिस्ट्रेशन। विवाहित स्त्रियाँ, भारतीय पद्धतिके अनुसार मस्तकपर कुंकुम या सिन्दूरका टीका लगाती हैं।

ये लोग जब टेलीफोनमें बात करते हैं, किसीसे मिलते हैं तो पहले 'हरे कृष्ण'का उच्चारण करते हैं। डेट्रायटमें एक ऐसा ही विवाह हुआ है, वहाँ नववधूकी माता श्रीमती रेमाण्ड क्लासनने बताया कि "मैंने तथा मेरे पतिने श्रीकृष्ण-मन्दिरकी पूजामें भाग लिया है। मेरा साढ़े तीन वर्षका पौत्र 'हरे कृष्ण'का उच्चारण करके टेलीफोनपर उत्तर देता है।"

अबतक २५ श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर या केन्द्रोंकी स्थापना हो चुकी है। श्रीस्वामीजी कुल १०८ केन्द्र स्थापित करना चाहते हैं। वे लिखते हैं कि उनके भक्त हैम्बर्ग ( जर्मनी ) से टोकियो ( जापान ) तक तथा टोकियोसे सिडनी ( आस्ट्रेलिया ) तक फैले हुए हैं। नास्तिक लोग आस्तिक बनते जा रहे हैं। वे श्रीकृष्णके रूपमें भगवान्को पा रहे
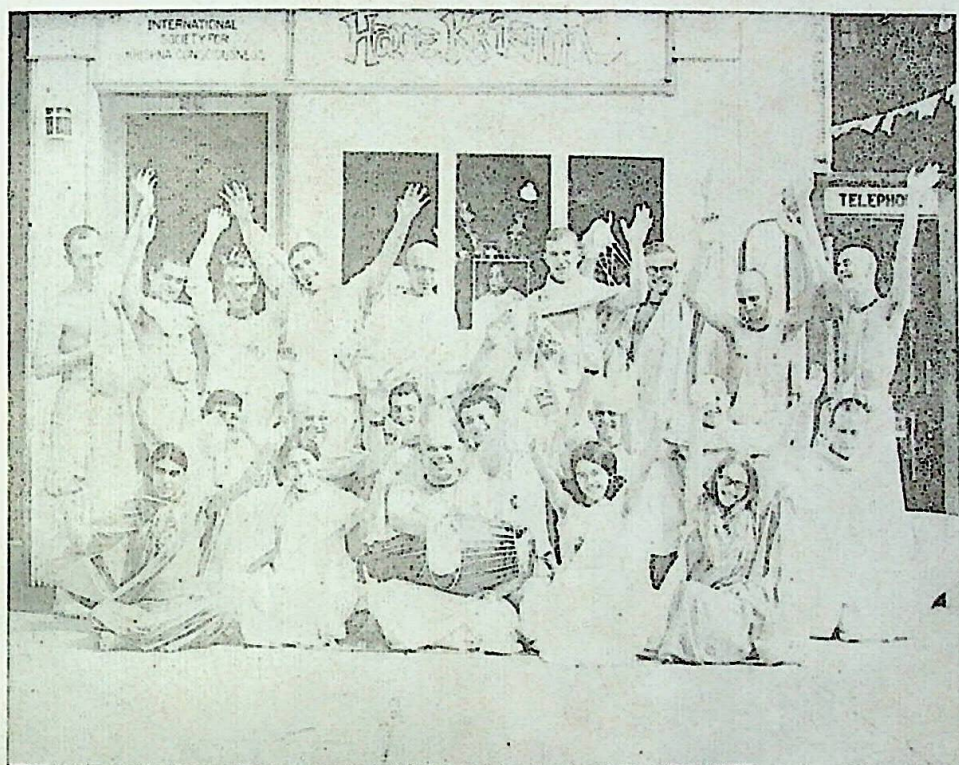
न्यूयार्क अमेरिकामें वहाँके नर-नारी भक्त कीर्तन कर रहे हैं।

लन्दनके एक पार्कमें वहाँ नर-नारी भक्त कीर्तन कर रहे हैं।

लास एंजिल्सके मन्दिरमें श्रीराधाकृष्णकी मूर्ति
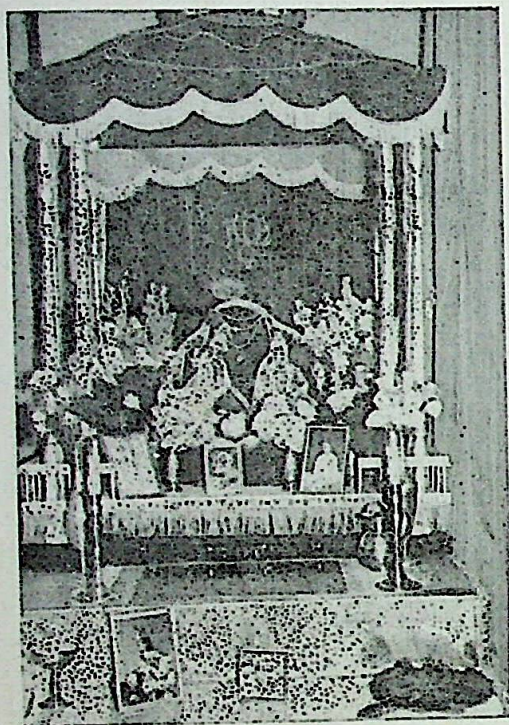
लास एंजिल्सके मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजीकी मूर्ति
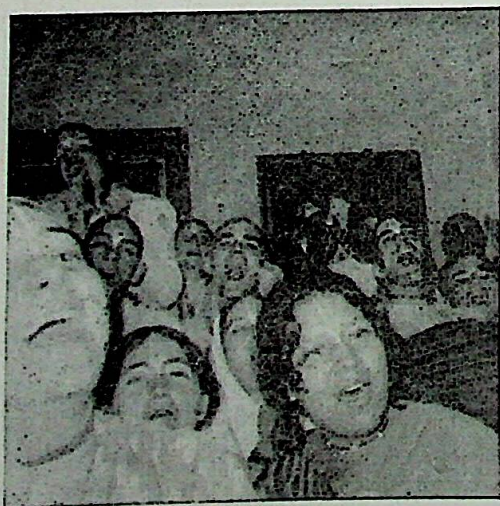
मन्दिरमें कीर्तन करती नर-नारियोंकी भीड़का एक अंश
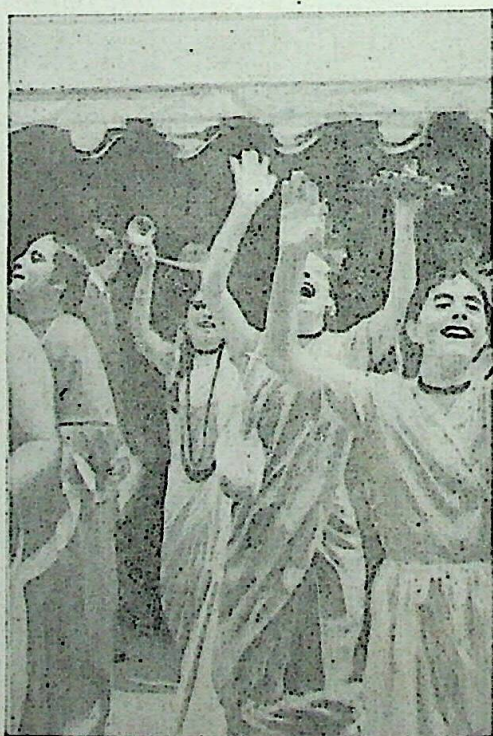
न्यूयार्ककी सड़कोंपर कीर्तन और नृत्य

हैं। यह सब महाप्रभु श्रीचैतन्यकी कृपा है।' ये लोग भक्तिके साथ ही भागवत-गुण—सदाचार, सद्भावना, मैत्री, सहिष्णुता, संयम आदिका क्रियात्मक आदर्श चरितार्थ कर रहे हैं।

इनकी सहनशीलता, नामकीर्तनमें विश्वास, मैत्री-भावनाका एक उदाहरण देखिये—

'एक जगह राधाकृष्ण-मन्दिरके पीछे सिगमाची संघ ( Sigma Chi Fraternity ) का भवन था। वे लोग इन श्रीकृष्णसेवकोंकी कार्यवाहियोंको पसंद नहीं करते थे और बड़े हैरान थे। कुछ सप्ताह पूर्व एक दिन अर्धरात्रिके समय सिगमचीके कुछ लड़के शराबकी शीशियोंको कमरमें खोंसे मन्दिरमें आये और उन्होंने कुछ खिड़कियाँ तोड़ डालीं।

'श्रीकृष्ण-मन्दिरके सदस्य बिस्तरोंसे निकले और कपड़े पहनकर झाँझ-खड़ताल-मृदंग आदि लेकर उन्हें बजाते, कीर्तन करते और नाचते हुए संघके भवनके सामने पहुँच गये।

'पहले तो उन्होंने इन लोगोंपर शराबके खाली बर्तन फेंके। फिर उन्होंने दिल्लगी उड़ाते हुए कीर्तनकारोंको अंदर बुलाया। ये कीर्तन करते हुए अंदर चले गये। आरम्भमें तो उन लोगोंने इनका उपहास किया, परंतु बीस ही मिनट बाद वे सब इनके साथ कीर्तन करने और गाने लगे। फिर तो वे इन सबको निकटके सोरोरिटि हाउस ( Sorority House ) में ले गये और वहाँकी लड़कियाँ भी इनके साथ नाचने तथा कीर्तन करने लगीं।

'सारा वातावरण बिल्कुल बदल गया। यह दृश्य बड़ा ही सुन्दर था। सारी शत्रुता नष्ट हो चुकी थी।'

एक सज्जन लिखते हैं कि 'यह बड़ा सुन्दर अद्भुत व्यापार चल रहा है—अमेरिका और यूरोपमें। बाल डान्सके स्थानपर कीर्तन-नृत्य-स्थल बन गया है। इन्द्रियपूजनके स्थानपर ब्रह्मचर्य, नशीली वस्तु तथा चाय, काफी, तम्बाकू आदिके स्थानपर नामामृतपान, मांस-मछली-अण्डोंकी जगह पवित्र शाकाहार, शत्रुताके स्थानपर मैत्री, अहंकारके स्थानपर विनम्रता और साथ ही परमात्माकी प्राप्तिका सबसे सरल साधन नाम-जप और नाम-संकीर्तन। सचमुच चमत्कार है।'

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व कहा था—

पृथिवीते जत आछे नगर आदि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हइबे मम नाम॥

'पृथ्वीमें जितने भी नगर-ग्राम आदि हैं, सर्वत्र मेरे ( कृष्ण ) नामका प्रचार होगा।' भगवान्‌ने कलियुगके जीवोंपर कृपा करके स्वामीजी श्रीभक्तिवेदान्तजीके द्वारा सम्भवतः अमेरिका, यूरोप तथा जापान आदि देशोंके नगरोंकी गली-गलीमें भगवन्नाम-कीर्तनका प्रसार कराके उसीका सूत्रपात किया हो।

श्रद्धेय श्रीभक्तिवेदान्तजी महाराज पाश्चात्त्य जगत्‌के लोगोंके जीवनको सदाचार-सम्पन्न बनाकर नाम-प्रसारके द्वारा उनका कल्याण करनेमें सफल हों। भगवत्कृपासे यह बहुत ही कल्याणकारी कार्य हो रहा है। इसमें जो हजारों युवक-युवतियाँ क्रियात्मक सहयोग दे रहे हैं, उनपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। वे अभी तो पूर्णतया सच्चे भावसे ही कार्य करते प्रतीत होते हैं। उनमें कहीं भी बनावटीपन नहीं मालूम होता। आगे चलकर कैसे क्या होगा, सो भगवान् जानें। भगवान् इस मङ्गल-कार्यके सम्पादनमें सबको सद्बुद्धि, सद्भाव, सत्-साहस तथा सफलता प्रदान करें।*

स्वामीजीसे कोई पत्र-व्यवहार करना चाहें तो पता यह है—

Tridandi Goswami Sri
A. C. Bhaktivedanta Swami,
International Society for Sri Krishna Consciousness,
Center: 1975 So. ha Cienega Blvd.
Los Angeles, CALIFORNIA.

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

* यद्यपि इनके सब कार्य सब लोगोंके लिये समर्थन योग्य नहीं हो सकते, तथापि जो कुछ हो रहा है—अधिकांशमें बहुत ही उत्तम हो रहा है।

# और यदि वहाँ भी ऐसा ही हुआ तो....?

## [ ऐतिहासिक कहानी ]

( लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी० )

( १ )

राजकुमारी वासवदत्ता हर प्रकार शील-गुणसम्पन्न अत्यन्त रूपवती थीं। उनके पिता इस सुशील कन्याके लिये एक योग्य वरकी खोजमें चिन्तित रहते थे। जो कोई योग्य युवक दृष्टिमें आता, राजा उसे लुब्ध-दृष्टिसे देखते और उसमें भावी जामाताके दर्शन करते। शायद राजकुमारीके अनुरूप उच्चतम गुणोंसे विभूषित कोई राजकुमार उपलब्ध हो जाय।

किंतु राजकुमारी वासवदत्ताके अनुरूप राजकीय कुलका युवक न मिला। उनके नेत्र, जैसे चातक स्वाति नक्षत्रकी बूँद-के लिये तरसता रहता है, उसी प्रकार अतृप्त आकाङ्क्षासे खुले रहे।

पर राजाने खोज जारी रक्खी कस्तूरीकी तलाशमें मृग-की तरह!

संयोगसे एक दिन उस नगरमें गौतमबुद्धने पदार्पण किया, चन्द्रमाके उदय होनेकी तरह सर्वत्र एक अलौकिक प्रकाश फैल गया। राजा युवक गौतमके रूप-गुण-सौन्दर्य और उच्च विचारोंसे मन्त्र-मुग्ध हुए। चुम्बक-सदृश गौतमका व्यक्तित्व सचमुच अत्यन्त आकर्षक था।

'क्या ही सौभाग्य हो, यदि गौतम-जैसा योग्य दामाद मुझे प्राप्त हो जाय! तब मैं वासवदत्ता-जैसी शीलगुणसम्पन्न पुत्रीसे सच्चा न्याय कर सकूँगा।'—राजाने मन-ही-मन निर्णय किया—'मुझे गौतमको जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये हर युक्तिसे।'

राजाने युवक गौतमके पास राजकीय विवाहका प्रस्ताव भेजा। प्रस्ताव स्वीकार करवानेके लिये बड़ी खुशामद की। नाना प्रकारके सांसारिक प्रलोभन भी दिये। जीतनेका हर प्रकारसे प्रयत्न किया।

किंतु सब उपाय व्यर्थ!

उनके भेजे गये संदेशवाहकोंको नकारात्मक उत्तर मिले!

'अच्छा, अब मैं स्वयं ही गौतमसे प्रार्थना करने जाऊँगा। मैं उन्हें राजी कर सकूँगा।' राजाने निर्णय किया।

मनमें आशाका दीप जलाये राजा पूरे राजसी ठाटबाटसे गौतमके पास पहुँचे। अपना ऐश्वर्य दिखाकर वे युवक गौतम-का मन जीत लेना चाहते थे।

गौतम जिज्ञासुओंमें धार्मिक प्रवचन कर रहे थे। जनता उनकी वाणीका रसास्वादन कर रही थी। जब गौतम अपना प्रवचन समाप्त कर चुके और तृप्त श्रोताओंकी भीड़ छँट गयी, तब एकान्त पाकर राजाने अत्यन्त मधुर और विनीत स्वरमें निवेदन किया—

'वत्स! मेरी सुपुत्री वासवदत्ता रूप-शील और गुणोंमें सर्वथा आपके योग्य है। मैं बहुत दिनोंसे आप-जैसे उदीयमान, विचारशील और सच्चरित्र वरकी खोजमें था। सौभाग्यसे घर बैठे ही गङ्गाजी-सदृश आप हमारे नगरमें पधारे हैं। आप मेरी पुत्री वासवदत्ताको सहधर्मिणीके रूपमें स्वीकार कीजिये। कृतार्थ होऊँगा। ऐसी कुशल गृहिणीको पाकर आपका दाम्पत्य जीवन सुखी होगा।'

गौतम इस प्रकारके सुझावके लिये किंचित् भी तैयार न थे। भला क्या उत्तर देते? बातको सुनी-अनसुनी कर दी।

राजाने पुनः मधुर शब्दोंमें दोहराया—

'भगवन्! मेरी पुत्री रूप-शील-गुणमें सर्वथा आपके योग्य है। कृपा कर इसे जीवन-सहचरीके रूपमें ग्रहण कीजिये। मैं अपनेको धन्य मानूँगा।'

गौतम तबतक विचारोंमें खोये हुए थे।

राजा चन्द्र-चकोरकी तरह एकटक उनकी ओर उत्सुकता-पूर्वक उत्तरकी प्रतीक्षामें निहार रहा था।

'राजन्! मैंने यशोधरा-जैसी रूपशीलवती धर्मपत्नीको धर्म-प्रचारके उद्देश्यमें लगे रहनेके कारण त्याग दिया है। क्या यह बात आपको विदित नहीं है?'

'यह मैं जानता हूँ तथागत! वासवदत्ता यशोधरासे कई दृष्टियोंमें आगे है। आप वासवदत्ताके साथ रहकर यशोधराको भूल जायँगे। वासवदत्ता बहुत योग्य, चतुर और आकर्षक है।'

'भूल जाऊँगा ? सो कैसे ? आप अपना अभिप्राय स्पष्ट कीजिये ।' बुद्धने पूछा ।

'वासवदत्ता हर दृष्टिसे यशोधरासे रूप-शील-गुणमें ऊँची है।'

'वह यशोधरासे ऊँची तो भला क्या होगी ?'

'नहीं··नहीं' राजाने प्रार्थना की, 'वासवदत्ता गुणोंमें बढ़ी-चढ़ी है । आप उसे देख तो लीजिये ।'

'पर··पर··एक शङ्का है !' गौतम झिझके ।

'क्या शङ्का है भगवन् ! कहिये, मैं उसका निवारण करूँगा।'

'राजन् ! मुझे आत्मज्ञानकी जिज्ञासा हुई थी, वैराग्यकी भावना उदित हुई तो मैंने यशोधरा-जैसी प्रिय, शील-गुण-सम्पन्न धर्मपत्नीतकका परित्याग कर दिया था; फिर··अब भला·····!'

'फिर, अब भला क्या ? भगवन् ! मेरी पुत्री वासवदत्ता उसकी अपेक्षा श्रेष्ठतर है ।'

'एक भोगत्यागी वैरागी भला किसीकी भी कन्याको कैसे स्वीकार करेगा ?'

'ओफ़ ! तो यह बात है, तथागत !'

'हाँ राजन् ! विवशता है, क्षमा करें । शेष जीवनमें अब मैं विवाहकी कल्पना भी नहीं कर सकता ।'

राजा निराश होकर चले गये, टूटा हृदय लिये हुए !

यह सारी घटना और बातें राजकुमारी वासवदत्ताके कानों-तक पहुँचीं । उसने इसे अपना व्यक्तिगत अपमान समझा । वह उग्र हो उठी और उसने गौतमबुद्धसे अपने अपमानका बदला लेनेकी ठानी ।

घायल सर्पिणीके समान फूत्कार करते हुए उसने गर्जना की—

'गौतमने हमारे साथ सरासर अन्याय किया है । यह तो मेरा और मेरे पिताजीके अपमानका प्रश्न है । उनसे इस अपमानका प्रतिशोध लेकर रहूँगी । जीवनमें कभी तो अवसर आयेगा ही ।'

प्रतिशोधका भाव एक अग्निकी तरह है । इसकी अग्नि गुप्त-रूपसे धधकती रहती है और मनको सर्वदा अशान्त तथा उद्विग्न करती रहती है । एक बार जब किसीसे बदला लेनेकी भावना मनमें बैठ जाती है, तो वह व्यक्ति अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित, देर-सवेरपर ध्यान नहीं देता । प्रतिशोधका दुष्ट विकार मनुष्यके विवेकको लुप्त कर देता है ।

·········································।

( २ )

बहुत दिनों बाद ।

युगका प्रवाह तेजीसे आगे बहता गया । जो किशोर थे, वे अब युवक बन गये ।

राजकुमारी वासवदत्ताका विवाह कौशाम्बीके राजा उदयनसे हुआ । वासवदत्ता अब महारानीके पदपर आसीन थीं । उनके हाथमें अब सत्ता थी । वे कौशाम्बीके राजमहलों-में ऐश्वर्यका राजसी जीवन व्यतीत करती थीं ।

एक दिन संयोगसे उन्हें समाचार मिला कि गौतमबुद्ध अपने शिष्योंके साथ कौशाम्बीमें पधारे हैं । गौतमका नाम सुनते ही अतीतकी स्मृतियाँ जाग्रत् हो आयीं ।

प्रतिशोधकी अग्नि एकाएक जल उठी । बदला लेनेका यह अच्छा मौका लगा ।

'अब मैं अपनी उच्च स्थितिसे लाभ उठाकर गौतमको नीचा दिखाऊँगी । नारीको कोमल माना जाता है, किंतु मैं दिखा दूँगी कि मैं कितनी शक्तिशालिनी हूँ ।' उसने मनमें सोचा ।

वासवदत्ताने दुष्टोंको धन देकर यह सिखाया कि गौतमबुद्धको खूब तिरस्कृत और हर प्रकारसे अपमानित किया जाय । अधिक-से-अधिक सताया जाय ।

दुष्ट अपनी दुष्टता कब छोड़ते हैं ? उन्हें पात्र-कुपात्रका ध्यान नहीं रहता । वे यह भी नहीं देखते कि किससे बदला लिया जाय और किसे छोड़ा जाय !

यहाँ भी ऐसा ही हुआ । गौतमको भयानक सामाजिक विरोधका सामना करना पड़ा । उकसाये हुए दुष्ट उनके पीछे पड़ गये ।

कौशाम्बी राज्यमें गौतमबुद्ध जहाँ भी गये, दुष्टोंने उन्हें परेशान किया । नाना प्रकारके विघ्न उपस्थित किये । मान-हानि की । वे जहाँ कहीं भी प्रवचनके लिये तैयारी करते, वहींसे उन्हें निराश होना पड़ता । कोई दुष्ट उन्हें अपशब्द कहता, तो कोई बदमाश सड़ी वस्तुएँ उनपर फेंकता था । उनके धार्मिक भाषणोंमें आनेवाले श्रोताओंको बहकाया जाता था । खुलेआम उनकी निन्दा की जाती थी ।

यह अपमानित जीवन किसी भी भावुक व्यक्तिके लिये असह्य होता। महात्मा बुद्धका अपमान होते देखकर उनके प्रधान शिष्य आनन्दको बड़ा मानसिक आघात पहुँचा। और शिष्योंने भी अपमानका विष सहा, पर वे कुछ कह न सके।

पर आनन्द इसे न सह सके। उन्होंने कहा—'भगवन्! यहाँके लोग धर्मका अर्थ तनिक भी नहीं समझते। आपके अमृतमय उपदेशोंसे वे कुछ भी लाभ नहीं उठाते। उलटे आपका उपहास करते हैं।'

'फिर क्या चाहते हो, आनन्द?' गौतमने पूछा।

'तथागत! यहाँके लोग बहुत खराब हैं। इनमें धार्मिक चर्चासे कुछ भी लाभ न होगा। यह सब अरण्यरोदनके समान व्यर्थ ही जायेगा। हम सबको अन्यत्र सज्जनोंमें चलना चाहिये, जहाँ जीवनकी गूढ़ गुत्थियोंको समझनेवाले विवेकशील व्यक्ति हों। वे कुछ धर्मका मर्म समझें!'

'आनन्द! यदि वहाँ भी लोगोंने हमारा ऐसा ही अपमान किया तो हम क्या करेंगे?'

'तो हम आगे और कहीं चलेंगे, सज्जनोंकी तलाशमें।'

'और यदि वहाँ भी ऐसे ही खराब आदमी मिले तो...?' बुद्धने शङ्का की।

'तो हम किसी चौथी जगह चलेंगे, पर शरीफ लोगोंमें ही प्रवचन करेंगे।'

'आनन्द! तो क्या हम इसी प्रकार अच्छे लोगोंकी तलाशमें इधर-उधर दुनियामें चक्कर लगाते रहेंगे?'

'जी हाँ, सुपात्रकी खोज तो करनी ही होगी।'

यह कहकर आनन्द गौतमबुद्धका मुँह निहारने लगे। वे समझते थे कि गौतम उनके उत्तरसे सहमत होंगे। पर गौतमने फिर कहा—

'नहीं, आनन्द! तुम्हारा दृष्टिकोण सही नहीं है।'

'फिर क्या करना धर्म रहेगा? धार्मिक दृष्टिसे भला सेवाका क्या मतलब है, भगवन्?'

'आनन्द! सेवाका अर्थ है दीन, हीन अविद्याग्रस्त लोगोंको, वे चाहे कहीं भी मिलें, ऊपर उठाना। भूलेको मार्ग दिखाना।'

'पर उसके लिये अच्छा वातावरण और उर्वर क्षेत्र भी तो होना चाहिये भगवन्!'

'नहीं, आनन्द! धर्मकी चेतना और आत्मोन्नतिका कार्य तो किसी भी क्षेत्रमें किया जा सकता है।'

'क्या स्थान और क्षेत्र बदलना जरूरी नहीं है? किसान बीज बोनेसे पूर्व अच्छे खेतकी तलाश करता है। उसे खूब जोतता-गोड़ता है। तब कहीं बीज बोता है। इसलिये अच्छे लोगोंमें जाना जरूरी है।'

'नहीं, आनन्द! लोग सब जगह प्रायः एक-से ही हैं। यह समझना कि दूसरी जगह लोग ज्यादा अच्छे होंगे, एक भ्रान्ति है। हर स्थानके लोग थोड़े-बहुत अन्तरसे प्रायः एक-से ही होते हैं। उनकी समझमें थोड़ा-बहुत अन्तर हो सकता है, पर मूल रूप एक ही है।'

'तो फिर इस नगरके लिये हमारी कौन-सी धर्म-नीति ठीक रहेगी, भगवन्?'

'हम इन्हींमें अपने प्रवचन करना जारी रखेंगे आनन्द! इनमें कुछ तो ऐसे समझदार होंगे ही, जो हमारी बातें समझेंगे। अच्छी बातें विवेकशील मस्तिष्कोंमें जरूर बैठेंगी, दुर्जन और कुपात्र स्वयं एक दिन चुप होकर बैठ जायँगे। सज्जन और दुर्जन सब जगह समान-रूपसे सुख और दुःखकी तरह मौजूद हैं।'

'फिर दूसरी जगह चलना......।'

'हाँ, आनन्द! स्थान छोड़कर कायरतासे भागना बेकार है। जो थोड़े-से सज्जन हैं, विवेकशील हैं, धर्मके सच्चे जिज्ञासु हैं, उन्हींके समझ लेनेसे हमें संतुष्ट हो जाना चाहिये। गहरी बातें तो कम ही लोगोंके मनमें उतरती हैं। वैसे संसारमें सब जगह लोग एक-जैसे ही हैं। दूसरी जगहके लोग यहाँवालोंकी अपेक्षा बेहतर होंगे, उनमें अच्छाई-ही-अच्छाई होगी, संकीर्णता, अहंकार, अज्ञान या अविद्या न होगी, ऐसा सोचना गलत है।'

'सब जगहके लोग एक-से ही हैं?'

'हाँ, जबतक यह अज्ञानरूपी अन्धकार मनुष्यसे नहीं छूटता, तबतक हर व्यक्ति पशु-जैसा ही अविकसित है। हमें अच्छे-बुरे सबमें देवत्वका विकास करना है। अज्ञानियोंके ज्ञान-नेत्र खोलने हैं। अधर्मप्रिय बुरे आदमियोंको भला बनाना है। वे तो विशेषरूपसे पात्र हैं। उन्हींमें धर्मकी चेतना जगानी है। बुरे आदमियोंसे डरकर भागनेसे काम न चलेगा।'

'तो इन्हीं दुष्टोंमें धार्मिक जागृतिका कार्य करना होगा क्या ?'

'हाँ आनन्द ! तुम जरा धैर्य रक्खो । अन्धकारमें ही प्रकाश फैलाना है । एकाग्र होकर प्रतिकूलताकी परवा न कर उत्साहसे धार्मिक जागृतिका कार्य करो । अन्तमें सत्य ही विजयी होता है । एक दिन तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी ।'

आनन्द निरुत्तर हो गये । गौतमबुद्धके अमृतमय उपदेश धीरे-धीरे सर्वत्र फैलते गये । दुष्टलोग हटते गये । सत्य, प्रेम और विवेकका दिव्य प्रकाश फैलता गया । जब यह तत्त्व वासवदत्ताको विदित हुआ, तो उसने भी अपनी गल्ती अनुभव की और गौतमबुद्धके पास आकर अपनी मूढ़ताके लिये क्षमा-प्रार्थना की ।

त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य बाधतः ।
( सामवेद ९ )

'परमात्मा ज्ञानियोंके हृदयमें प्रकाशरूप और मस्तिष्कमें विचाररूपमें प्रकट होता है ।'

# अद्वैत-वेदान्तमें पुनर्जन्म एवं परलोकका स्वरूप

( लेखक—डॉ० श्रीराममूर्तिजी शर्मा, एम्० ए०, [ संस्कृत-हिंदी ] शास्त्री, पी-एच्० डी०, डी० लिट्० )

अद्वैत-वेदान्तका सिद्धान्त यद्यपि भारतवर्षकी ही देन है, पर आज वह विश्वभरका सम्मानित सिद्धान्त है । इस दर्शन-पद्धतिको यह प्रतिष्ठा केवल अन्ध-श्रद्धाके आधारपर नहीं प्राप्त हुई है, अपितु इसकी विशदता, सार्वभौम स्थिति एवं तर्कपूर्णताने सभीको मुग्ध कर दिया है । मेरे विचारसे अद्वैत-वेदान्त ही एक ऐसी पद्धति है, जिसके अन्तर्गत सभी दार्शनिक समस्याओंका समुचित समाधान प्राप्त हो सकता है । यहाँ यह कथन भी अप्रासङ्गिक न होगा कि अद्वैत-वेदान्तके इस युगके समग्रतया प्रतिष्ठापक आचार्य श्रीशंकराचार्य हैं और उन्हींके द्वारा प्रतिष्ठापित दार्शनिक सिद्धान्त अद्वैत-वेदान्तके नामसे प्रसिद्ध है ।

जहाँतक पुनर्जन्म एवं परलोक सम्बन्धी विचारका प्रश्न है, यह प्रश्न नया नहीं है; अपितु वैदिककालसे ही इस प्रश्नकी समालोचना होती चली आ रही है । परंतु आजकल अनेकानेक पश्चिमी विद्वानों एवं नागरिकोंने भी इस ओर विशेष रुचि ली है, इसलिये भारतवर्षमें भी इस सम्बन्धमें, इस युगमें कुछ विशेष जिज्ञासा हो रही है । शांकरवेदान्तके अन्तर्गत ही नहीं, उससे पूर्ववर्ती अद्वैत-वेदान्तमें भी यह विचार पूर्णतया स्पष्ट मिलता है कि आत्माके सम्बन्धमें पुनर्जन्म एवं परलोक-गमनके सिद्धान्त सर्वथा अयुक्त हैं; क्योंकि आत्मा कूटस्थ, अचल एवं सनातन है । उपनिषदोंके साररूप एवं शांकर-वेदान्तके आधार-ग्रन्थ गीतामें यह स्पष्ट ही कहा गया है कि यह आत्मा जन्म-मरणका विषय नहीं है ।[1] मृत्यु उसीकी सम्भव है, जिसका जन्म हो । जब आत्माका जन्म ही नहीं होता तो मृत्यु ही किस प्रकार सम्भव हो सकती है ।[2] श्रीशंकराचार्य ही नहीं, अपितु उनके परम गुरु आचार्य गौड़पादने भी आत्माकी अजातताका ही प्रतिपादन किया है । इस प्रकार आत्माकी शाश्वतता, अजरता एवं नित्यताके सिद्ध होनेसे उसके लिये जन्म-मृत्यु एवं परलोकके प्रश्न वास्तविक नहीं प्रतीत होते । फिर दर्शनशास्त्रमें विवेचित पुनर्जन्म एवं परलोकवादकी स्थिति क्या है । इस सम्बन्धमें नीचे विचार किया जा रहा है ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जन्म एवं मृत्युका विषय शुद्ध अविद्यारहित आत्मा न होकर अविद्याकी वासनासे वासित जीव है । वासनायुक्त चेतनाको या प्रकृतिस्थ पुरुषको* जीव कहते हैं । जन्म एवं मृत्युका विषय यही वासनायुक्त चेतना अर्थात् प्रकृतिस्थ पुरुष—जीव है और इस जीवत्वका आधार आत्मा है ।[3]

## मृत्युका स्वरूप

जब विविध प्रकारकी बाधाओंके द्वारा नाड़ियोंमें संकोच एवं विकासन होता है तो शरीरस्थित प्राणवायुकी स्थिति बिगड़ जाती है । परिणाम यह होता है कि भीतर प्रविष्ट श्वास कठिनतासे बाहर आता है और बहिर्निःसृत श्वास कठिनतासे भीतर जाता है । इस प्रकार शरीरकी नाड़ियोंकी गति

१—गीता २ । २०

२—शा० भा० गीता २ । २०

* गीता १३ । २१

३—चेतनं वासनातत्त्वं स्वात्मतत्त्वेऽवतिष्ठति ।
( योगवासिष्ठ ३ । ५५ । ५ )

जब इतनी अस्त-व्यस्त हो जाती है कि प्राणवायुकी गति रुक जानेके कारण श्वासका आना-जाना बंद हो जाता है तो इसीको 'मृत्यु' कहते हैं। इस स्थितिमें प्राणवायु निकलकर आकाशमें व्याप्त हो जाता है। केवल वासनामय चेतना आत्मामें स्थित रहती है, यही जीव है और जन्म एवं मरणका विषय भी यही है। गीताके अनुसार यही जीव ( देही ) शरीरके जीर्ण होनेपर नवीन वस्त्रोंके समान नवीन शरीरोंको धारण करता है। या इस प्रकार कह सकते हैं कि जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर जा बैठता है, उसी प्रकार जीव भी एक शरीरका त्यागकर दूसरा शरीर ग्रहण करता है।

## क्या जीव एक शरीरका त्याग करनेके पश्चात् तुरंत दूसरा शरीर ग्रहण कर लेता है ?

यह एक कौतूहलपूर्ण प्रश्न है। इस सम्बन्धमें हमारी धारणा यह है कि जो अज्ञानी जीव शरीर त्याग करते हैं, वे तुरंत ही स्थूल शरीर ग्रहण नहीं करते, वरं अपने-अपने पूर्वजन्मकृत कर्मोंके आधारपर विभिन्न लोकोंकी प्राप्ति करते हैं। इन पुण्यापुण्य कर्मोंका भोग करनेके पश्चात् ही जीव दूसरे शरीरको ग्रहण करते हैं।[४] यही हिंदूधर्मकी परलोकवाद-की स्थिति है, जिसका आधार कर्मवादका सिद्धान्त है।

## कर्म और विभिन्न लोक

यहाँ यह कह देना उपयुक्त होगा कि विभिन्न लोकोंकी प्राप्ति करनेवाली प्रेतात्माएँ हैं। ये प्रेत वासनायुक्त जीव ही हैं। इनमें पुण्यवान् जीव अपने-अपने शुभ कर्मोंके अनुरूप स्वर्गादि लोकोंको प्राप्त करते हैं।[५] इसके विपरीत जो पापी जीव हैं, वे नरकादि लोकोंको भोगते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मध्यम कोटिके जीव भी होते हैं, जो स्वर्ग एवं नरक दोनोंकी ही वासनाओंका अनुभव करते हैं। वैसे भारतीय दर्शनमें, सामान्य पापी, मध्यम पापी, स्थूल पापी, सामान्य धर्मवाले, मध्यम धर्मवाले और उत्तम धर्मवाले—ये छः प्रकारके जीव बतलाये गये हैं। यह व्यवस्था भी कर्मोंके अनुसार ही है। कर्मोंके अनुसार जीव स्वर्ग एवं नरकका भोग करके निज-निज कर्मानुरूप विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। उदाहरणके लिये उत्तम कोटिके जीव स्वर्गमें विद्याधर आदि योनियोंमें सुख भोगकर मनुष्यलोकमें सम्पन्न गृहोंमें जन्म लेते हैं।[६] इसी प्रकार मध्यम एवं अधम कोटिके जीव निज-निज कर्मानुसार अनेक योनियोंमें जन्म ग्रहण करते हैं।

## जीवन्मुक्त और विदेहमुक्तकी स्थिति

जहाँतक जीवन्मुक्त और विदेह मुक्तकी स्थितिकी बात है, दोनोंकी मुक्ति-सम्बन्धी स्थितिमें भेद नहीं देखा जा सकता; क्योंकि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' के अनुसार मुक्त जीव ब्रह्मरूपताको ही प्राप्त हो जाता है और अखण्ड ब्रह्म-रूपतामें भेद देखना भ्रम ही कहा जायगा।[७] अविद्या-निवृत्ति एवं ज्ञानोदय होनेपर भी प्रारब्धकर्मके भोगपर्यन्त मुक्त जीवको भी शरीर धारण करना पड़ता है। आचार्य शंकरने इस सिद्धान्तको स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिस प्रकार एक बार चलाया हुआ कुम्भकारका चक्र तबतक नहीं रुकता, जबतक कि उसका वेग समाप्त नहीं हो जाता, उसी प्रकार मुक्त पुरुषको भी फलदानोन्मुख—प्रवृत्त फलवाले कर्मोंके भोगके लिये जीवन धारण करना पड़ता है।[८] जहाँतक जीवन्मुक्तोंके लौकिक व्यवहारका प्रश्न है, ये जीवन्मुक्त प्राणी संसारमें रहते हुए भी संसारसे असम्बद्ध रहते हैं।[९] परंतु ये अकर्मण्य नहीं कहे जा सकते; क्योंकि स्वभावतः इनके द्वारा कल्याणप्रद कर्म सम्पन्न होते हैं और इन कर्मोंमें इनकी शुभाशुभ भावना नहीं होती। जब जीवन्मुक्त प्राणीके समस्त शुभाशुभ कर्मभोग समाप्त हो जाते हैं तब वह शरीर धारण नहीं करता। यही विदेहमुक्तिकी स्थिति है। जिस प्रकार घटादिकी स्थितिके नष्ट होनेपर आकाशमात्र अवशिष्ट रह जाता है, उसी प्रकार केवलावस्थामें अज्ञानो-पाधि एवं तज्जन्य संस्कारोंके नष्ट होनेपर ब्रह्ममात्र अवशिष्ट रह जाता है।

---

४—प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः। ( गीता ६। ४१ )

५—देखिये, छान्दोग्योपनिषद् ५। १०। ३—६।

६—ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। ( गीता ९। २१ )
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। ( गीता ६। ४१ )

७—ब्रह्मैव हि मुक्त्यवस्था, न च ब्रह्मणोऽनेकाकारयोगोऽस्ति। ( ब्र० सू० शा० भा० ३। ४। ५२ )

८—ब्र० सू० शा० भा० ४। १। १५।

९—वेदान्तसार—३५

जहाँतक ब्रह्मरूपताको प्राप्त ज्ञानीके जन्मग्रहण करनेकी बात है, 'भूयो न स आवर्तते, न स आवर्तते', 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' के अनुरूप उसका पुनर्जन्म न होना सिद्ध ही है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानीके स्वर्गादि परलोक-गमनकी बात भी सर्वथा असङ्गत है; क्योंकि जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, शुद्ध आत्माकी स्थिति कूटस्थता, नित्यता एवं अचलताकी स्थिति है। यदि फिर भी आत्माके ब्रह्मलोक प्राप्त करनेकी बात कही जाती है तो उसका आशय यही है कि अविद्योपाधिक जीव जब अपने स्वरूपका बोध कर लेता है तो वह ब्रह्मरूपताको प्राप्त होता है। इस प्रकार यह ब्रह्मरूपता जीवकी स्थिति-विशेष है। यों, इस ब्रह्मरूपताकी स्थिति-विशेषको ही ब्रह्मलोककी प्राप्ति कहा जा सकता है, न कि ब्रह्मलोक नामक किसी लोक-विशेषकी प्राप्तिको। संक्षेपमें, अद्वैतवेदान्तके अन्तर्गत अविद्यावासित जीवके सम्बन्धसे ही पुनर्जन्म एवं परलोकके प्रश्नोंकी सङ्गति है, न की परमार्थ ब्रह्मकी दृष्टिसे।"[१०]

# प्रार्थना

( लेखक—पण्डित श्रीज्वालाप्रसादजी भार्गव, एडवोकेट )

मानव-जीव दैवी प्रकृतिका प्राणी है। मनुष्यके हृदयके तहमें एक अलौकिक शक्ति विराज रही है। मनुष्यका जो मनुष्यत्व है, वह उसकी प्रवृत्तिका अध्यात्मभाव, उसका सदाचार, उसकी पवित्रता और उसके मन, बुद्धि, आत्मा और परमात्माके साथ योग है। वह सहज-स्वभावसे सदैव ईश्वरचिन्तन करता रहा है और ऐसी सिद्धि लाभ करनेके खोजमें रहा है, जिससे चिरन्तन अमरत्व और परब्रह्मके साथ पूर्ण सायुज्य प्राप्त हो।

ईश्वरके याद करनेके न जाने कितने प्रकार हैं। उसे प्राप्त करनेके लिये न जाने कितने मार्ग एवं मत हैं। हम वन्दना, स्तुति, पूजा, पाठ, जप और प्रार्थनासे ईश्वरको याद और प्रसन्न करनेका प्रयास करते हैं। पर भगवत्प्राप्तिमें प्रार्थनाका बहुत बड़ा महत्त्व है। प्रार्थना मनुष्यकी जन्मजात सहज-प्रवृत्ति है। प्रार्थनाकी वृत्ति देश-कालसे सीमित नहीं, वह विश्वव्यापक है। मानवताके पथप्रदर्शनके लिये संसारमें बहुतसे दीपक जले हैं, पर प्रार्थनाका दीपक अद्भुत एवं दिव्य है।

वन्दना, स्तुति, पूजा, पाठ, जप और प्रार्थना—इनमें जो अन्तर है, उसे समझना आवश्यक है। वन्दनाका अर्थ—हम जिसकी वन्दना करते हैं उसके जो आभार-उपकार हमारे ऊपर हैं, उनको व्यक्त करते हुए कृतज्ञता प्रकट करके उसे नमस्कार करना। ( नमस्कारका अर्थ है, अपने अहंकार-को प्रणम्यके सम्मुख झुका देना। )

स्तुतिका अर्थ है—प्रशंसा। इसमें हम जिसकी स्तुति करते हैं, उसके गुणोंका, उसकी महिमाका वर्णन प्रधान रहता है।

पूजाके दो अङ्ग हैं। एक भक्ति, दूसरा भजन। प्रभुके प्रति प्रेम या अनुराग 'भक्ति' है। सत्य, दया, ब्रह्मचर्य, धैर्य आदि जिन दैवी गुणों और चरित्रोंमें देवता देवत्वमें स्थित हैं, उसके साधनमें पूर्ण योग देना, अपनेको समर्पण करना यह भजन है। पाठ या जप स्तोत्रों एवं मन्त्रोंका उच्चारण करना भी भजन है।

इन सबमें अचिन्त्य-शक्ति है और सबमें बहुत लाभ होता है।

प्रार्थनाका अर्थ है—याचना करना, माँगना। प्रार्थना आत्माकी पुकार है। संसार तथा शरीरको थोड़ी देर भूलकर, प्रभुको दयासिन्धु, सर्वशक्तिमान् मानकर, सब कुछ छोड़कर, उनपर भरोसा कर, स्वमतिके अनुसार जब हम उनसे कुछ माँगते हैं, तब हमारी उनसे प्रार्थना होती है। प्रार्थनाका स्रोत, कण्ठ नहीं, हृदय है। जीवात्माका परमात्माके साथ हृदयकी अनन्यभक्तिसे प्रेममय सम्बन्ध जोड़ना—प्रार्थनाका उद्देश्य है। नित्य-निरञ्जन निराकार ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त रहनेपर भी सबको नहीं मिलता। उस गहन, गम्भीर, विराट् और अनन्त-तत्त्वको पानेकी साधनामें जिस धैर्य और तत्परताकी आवश्यकता है, वह दुर्लभ है। पर प्रार्थना चित्तको प्रभुके सम्मुख उपस्थित कर देती है और यह अवसर ला देती है कि साधक उनसे बोल सके, उनके सामने अपने हृदयको खोलकर रख सके, उनसे कुछ पानेको उत्सुक और व्याकुल हो उठे और उनसे परमार्थकी दीक्षा लेकर जीवनको सत्य, शिव और सुन्दर बना सके। एक ऐसा क्षण, जिसमें प्रभुकी सच्ची याद हो, लाखों मुद्राओंसे अधिक मूल्यवान् है।

१०—विशेष देखिये, ब्र० सू० शा० भा. ४।३।७।

प्रार्थना हमारे अधिक अच्छे, अधिक शुद्ध होनेकी आतुरता-को सूचित करती है। महत्त्व इसका है कि साधक प्रार्थनामें कितना तल्लीन हो सकता है। सच्ची प्रार्थनाके प्रभावसे साधकके सभी आचार-विचार और उच्चार दिव्यत्वसे ओत-प्रोत रहते हैं। हर सच्ची प्रार्थनाके पश्चात् एक नये और दृढ़ आत्मबलका लाभ होता है। साधककी प्रत्येक क्रिया प्रभुको समर्पित होनी चाहिये, प्रत्येक क्षण प्रार्थनासे परिपूरित होना चाहिये। समस्त जीवन ही प्रार्थनामय होना चाहिये।

प्रायः लोग कुछ पद्य या श्लोक याद कर लेते हैं। प्रारम्भमें ये बहुत रोचक लगते हैं, किंतु कुछ समयमें श्लोक या पद्यके शब्दमात्र बोले जाते हैं। मनको उन शब्दोंका अर्थ स्पर्श ही नहीं करता। उन श्लोकों या पद्योंको प्रतिदिन-की प्रार्थनामें रखते-रखते पाठमात्र न बनने देना चाहिये। जब भी साधकके भाव उनसे जाग्रत् न हों तो उन्हें बदल देनेमें संकोच न होना चाहिये। उत्तम प्रार्थना वही है, जिसके शब्द पहलेसे निश्चित न हों। प्रार्थना करनेके समय जो भाव चित्तमें उठें, उन्हें अपने शब्दोंमें व्यक्त होना चाहिये। जो साधकके हृदयके उद्गार हों और वे उसीके शब्दोंमें उसके भावोंको पूर्णताके साथ प्रकट करते हों, ऐसी प्रार्थना होनी चाहिये। यही प्रार्थनाका रहस्य है। यह बात साधकपर ही निर्भर है कि उसे कैसी प्रार्थना अनुकूल पड़ती है।

रात्रिमें निद्रासे पूर्व तथा प्रातः निद्रा-त्यागके तुरंत पश्चात्के क्षण प्रार्थनाके सर्वोत्तम क्षण हैं। दिनभरके किये गये कर्म ईश्वरके सम्मुख रखना और निकृष्ट कर्मोंके लिये क्षमा माँगना एवं संकल्प करना कि आगे जहाँतक होगा, ऐसा कर्म फिर न होगा। इस प्रतिज्ञाके साथ विराम करना—फिर प्रातः नवीन शक्ति और सुझावके लिये प्रार्थना करके दिनका कार्य प्रारम्भ करना, यह प्रतिदिनका कर्तव्य होना चाहिये। प्रार्थनासे शयन तथा प्रार्थनासे जागरण—जीवन-को प्रार्थनामय बनानेका प्रथम सोपान है।

श्रीरामकृष्ण परमहंसने कहा था—'साधना करनी चाहिये—एकान्त वनमें, मनमें या घरके निर्जन कोनेमें (वने, मने, कोने)। स्वच्छ-सुन्दर एकान्त स्थान हो, तन-मन पवित्र हो, जहाँ चित्त एकाग्र हो सके और अवकाश मिले, तभी प्रार्थना सुलभ है।

प्रार्थना क्या की जाय?—यह प्रश्न अति गम्भीर है। अनेक संकटोंसे ग्रस्त और उलझनोंसे घिरा मानव व्यग्र और व्याकुल हो उठता है। वह दुःख और व्यथासे छूटनेके लिये प्रार्थी होता है। वह मान्यता करता है कि 'अमुक कार्य होनेपर यह पूजा करूँगा, यह पुण्य करूँगा।'—यह वास्तवमें प्रार्थना नहीं, लेन-देनका व्यापार है। कुछ लोग प्रार्थना करते हैं कि 'मेरा अमुक कार्य अमुक ढंगसे ही हो।' वे भगवान्को अपनी इच्छा-पूर्तिके ढंग भी सुझाते हैं। उनको भगवान्की समझदारीपर भी भरोसा नहीं रहता। भगवान्के ढंगसे उनका हित हो, इतनी भी स्वतन्त्रता वे भगवान्को देना नहीं चाहते। यह आज्ञा है, प्रार्थना नहीं है। आदर्श प्रार्थना सकाम नहीं होती। सकाम भाव या स्वार्थमय प्रार्थना उसे सच्चे और विशुद्ध स्वरूपसे भ्रष्ट कर देती है। साधक अपनी प्रार्थनाको इस कसौटीपर रखकर देख ले कि कैसी प्रार्थना प्रभुकी दृष्टिमें उसे कौन स्थान देगी?

घोर आपत्तिके समयमें प्रार्थना आवश्यक है। श्रेष्ठ पुरुषोंका अनुभव है कि परमात्मा दीन-दुखीकी पुकारके आसपास ही रहते हैं। उनको 'खिन्न' परम प्रिय हैं। जब हम सच्चे हृदयसे प्रार्थना करते हैं तो उस प्रार्थनाका उत्तर मिलता है। यदि हमें प्रार्थनाका उत्तर न मिले तो समझना चाहिये कि प्रार्थना उचित मनोयोगसे नहीं की गयी—विफलता भगवान्की उपेक्षाके कारण नहीं, बल्कि अपनी शिथिलताके कारण है। ज्ञानसे-अज्ञानसे, जानेमें, अनजानेमें, स्वार्थसे, दुःखसे, जिज्ञासासे और जिस प्रकारसे भी जो परमेश्वरके पथपर आगे बढ़ते हैं, परमेश्वर उतने अंशोंमें और उन्हींके मानसिक रूपमें उन्हें मिलते हैं।

दीन-दुखियोंपर दया करना, उनकी व्यथामें सहायता करना—ईश्वरकी सर्वोत्तम प्रार्थना है।

जब ईश्वरने जीवन दिया और हृदयमें अपना स्थान बनाया तो फिर अपने लिये उनसे कहने-सुननेके लिये कौन-सी बात रह गयी? 'तुम्हींको तुमसे ही माँगते हैं, बस, और हमारा सवाल क्या है।' कितनी उच्च भावना है। ईश्वर प्राणीमात्रके भूत, वर्तमान, भविष्य-जीवनपर नजर डालकर स्वयं समझते हैं कि उनके भक्तका हित किसमें है और अहित किसमें है। जिस प्रकार एक अबोध बालक अपने-आपको अपने माता-पिताकी स्नेहमयी गोदमें सुरक्षित पाता है, उसी प्रकार भक्तको प्रभु-शरणमें निश्चिन्त होना चाहिये। प्रभु उसके योगक्षेमका भार स्वयं वहन करते हैं और उसके हिताहितका ध्यान पूर्णतः रखते हैं। समस्त जीवन उन्हींकी इच्छा और संकल्पसे पूरित होना चाहिये।

हाँ, अपने जन्मदाता माता-पिताकी आत्माकी शान्तिके लिये प्रार्थना करना मत भूलिये। जिनसे कुछ भी ज्ञान प्राप्त हुआ हो या जिनसे आपको दयाभाव मिला हो या जिनको आपसे कुछ दुःख पहुँचा हो, उनकी आत्माकी शान्तिके लिये भी आप अपनी प्रार्थनामें स्थान दें।

विश्वका साहित्य अनेकानेक प्रार्थनासे भरा पड़ा है, पर गोस्वामी तुलसीदासजीकी यह प्रार्थना विशेष उल्लेखनीय है—

जे निज भगत नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

परमात्माकी स्तुति और प्रार्थना करके वेदमन्त्रसे इस प्रकार उनसे वरदान माँगना चाहिये—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि।
(शुक्लयजुर्वेद १९। ९)

'हे परमपिता परमात्मन्! आप प्रकाश-स्वरूप हैं, कृपा कर मुझमें कुछ प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं, इसलिये मुझमें अपनी कृपासे कुछ पराक्रम धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं, मुझमें भी बल प्रदान कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं, इसलिये मुझमें भी कुछ सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट कार्योंको और दुष्टोंपर क्रोध और क्षमा करनेवाले हैं, आप निन्दा-स्तुति और अपने अपराधियोंको सहन करनेवाले हैं, कृपा करके मुझे भी सहनशील बनाइये।'

यही प्रार्थनाका फल होना चाहिये कि हम सब ईश्वरीय गुणोंको अपने हृदयमें धारण करें और संसारको सुखी करते हुए अपनी जीवन-यात्रा पवित्रतापूर्वक पूर्ण करें।

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

# दुःख

( लेखक—श्रीधर्मेन्द्रनाथजी वेदालङ्कार, शास्त्री, नैरोबी, केन्या )

एक बार एक विवेकी धनवान्‌के घर चोरी हो गयी। उसका सारा धन लूट लिया गया और वह कंगाल हो गया। उसकी स्त्री रोने लगी। उसके बच्चे घबरा गये। सगे-सम्बन्धी और मित्र हमदर्दी जतानेके लिये उसके पास एक-एक कर आने लगे। किंतु उस विवेकी अमीरका हाल तो दूसरा ही था—वह खूब खुश था। वह कहता था कि 'भगवान्‌ने मुझपर बड़ी कृपा की है—मेरा सारा भार उतार लिया है और मुझे हलका कर दिया है।' ऐसी ही एक घटना गुरु नानकदेवजी महाराजके बचपनकी है। उनके रिश्तेदारने उन्हें कुछ पैसे दिये और बाजारमेंसे कुछ सामान खरीद लानेको कहा। जब गुरु नानक जा रहे थे तो मार्गमें उन्हें भूखसे व्याकुल कुछ साधु दिखायी दिये। उन्होंने उस धनसे उन भूखे साधुओंकी भूख मिटायी और फिर वे खाली हाथ घर लौट आये। उनके रिश्तेदारने उन्हें खूब खरी-खोटी सुनायी। गुरु नानकजीने इसके जवाबमें कहा—'भूखोंको भोजन खिलाकर मैंने पुण्यका जो सौदा किया है उससे अच्छा सौदा और क्या हो सकता था?' इस तरह हरेक घटनाको अलग-अलग दृष्टिकोणसे देखा जा सकता है। अमीर अपना धन चोरी हो जानेपर व्याकुल होनेके स्थानपर आनन्दित हुआ और गुरु नानकजीने पैसोंसे आटा, दाल, चावल खरीदनेके स्थानमें भूखोंको भोजन देना उत्तम समझा। जिस तरह आकाशका कोई रंग नहीं है, उसी तरह संसारकी हरेक घटना न तो अपनेमें बुरी है और न अच्छी, किंतु हम उसे जिस दृष्टिसे देखते हैं, वह वैसी ही दिखायी देती है। यदि हम आसमानको हरे रंगका चश्मा चढ़ाकर देखें तो वह हमें हरा दीखता है और पीले रंगकी ऐनक आँखोंपर चढ़ाकर देखें तो वह हमें पीला दिखायी देता है। इसी प्रकार दुःख, बीमारी और अभावोंको भी अलग-अलग दृष्टियोंसे देखा जा सकता है। इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि दुनियामें दुःख और दर्द है, वह था और वह रहेगा। हम दुःख, दर्द, बीमारी और मौत—इनसे इतना घबराते हैं कि हमारा वश चले तो हम इन्हें संसारसे निकाल फेंकें। जैसे हम फलोंके छिल्कोंको कूड़ेदानमें डाल देते हैं, ठीक उसी तरह हम दुःखको भी घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, परंतु देखना यह है कि क्या हमारा सोचना ठीक है? इसका जवाब यह है कि

हम दुःखको एक दूसरी दृष्टिसे देखें तो हमें यह अपना प्यारा दोस्त, सच्चा मित्र मालूम होगा और हम इसका स्वागत करेंगे। जब हम बीमार होते हैं तो डाक्टर हमें कड़वी दवाई पीनेको देता है। हम उसे खुश होकर पीते हैं; क्योंकि हम बीमारीसे छूटना चाहते हैं। यदि कड़वी दवाई हमें बीमारीके बन्धनसे छुड़ाती है तो दुःख हमें पापके बन्धनसे मुक्त कराता है। हमें जो दुःख मिलता है, वह अपने ही बुरे कर्मोंके फलस्वरूप मिलता है। माता-पिता अपने बच्चोंको बहुत प्यार करते हैं, पर वे भी अपने बच्चोंके किये हुए बुरे कर्मोंके फल—दुःख नहीं भोग सकते। इसलिये हमने जो भी पाप या बुरे काम किये हैं, उनका परिणाम तो हमें स्वयं ही भोगना पड़ेगा। दुःख तो हमारे पापके बोझको हल्का करने आता है। इसलिये उसे अपना सच्चा दोस्त ही मानना चाहिये। हमने जो-जो बुरे काम किये हैं, वे फौलादी जंजीरोंसे भी ज्यादा मजबूत हैं। इन अपने किये हुए बुरे कर्मोंने हमें ऐसा जकड़ रक्खा है, इतना कसकर बाँध रक्खा है कि हमारी आत्मिक उन्नति बहुत रुक-सी गयी है। इसलिये हम दुःखका स्वागत करते हैं; क्योंकि यह हमारी इन जंजीरोंको काट डालता है और आगे बढ़नेमें हमारी सहायता करता है।

दूसरी बात यह है कि दुःख कँटीले तारोंवाली बाड़के समान है—आगे आनेवाली बड़ी मुसीबतसे बचानेवाली चेतावनीके समान है। ज्यों ही हम रास्तेसे भटकते हैं, त्यों ही कँटेदार बाड़के काँटे चुभकर हमें सचेत करते हैं कि हम मुसीबतकी ओर बढ़ रहे हैं। हम अपने दिमागसे अधिक काम लेते हैं तो सिरमें दर्द होने लगता है—यह दर्द हमें याद दिलाता है कि हम अपने दिमागपर बहुत बोझ डाल रहे हैं। यदि यह दर्द न हो तो हम अपने दिमागको आराम देना ही बंद कर दें और हो सकता है कि हम एकाएक Nervous Breakdown के शिकार हो जायँ। इसी तरह जब हम अपनी आँखोंसे अधिक काम लेते हैं तो वे दुखने लगती हैं और हम उन्हें कुछ देरके लिये विश्राम देते हैं। यदि यह दर्द न होता तो हो सकता है कि हम धीरे-धीरे अपनी आँखें ही खो बैठें। इसलिये दुःख या दर्द एक तरहका चौकीदार है—पहरेदार है, जो हमें हमेशा चौकन्ना करता है, सावधान करता रहता है। यह ऐसा पहरेदार है, जो कभी आँख नहीं झपकता और अपना काम निहायत ईमानदारी और मुस्तैदीसे करता है।

एक और तरहसे भी दुःख हमारी मदद करता है। दुःखमें हम अपने आपको असहाय, निराश्रय समझते हैं और अपने सगे-सम्बन्धियों, परिचितों या मित्रोंसे सहायताकी आशा करते हैं। जहाँ वे सहायता नहीं कर सकते, वहाँ हम परमात्मासे सहायता माँगते हैं। दुःखके समय हमारा अहंकार, हमारा घमण्ड चूर-चूर हो जाता है और हम अपनेसे बड़ी शक्ति अर्थात् परमात्माकी ओर देखते हैं—उसका सहारा ढूँढ़ते हैं। परंतु सुखके समय अभिमानका नशा इस प्रकार हमें बेसुध कर देता है कि हम प्रभुका नामतक भूल जाते हैं। कबीरजीने इसलिये ही तो कहा है—

> सुखके माथे सिल पड़ो जो राम हृदैसे जाय।
> बलिहारी वा दुःखकी जो पल-पल राम रटाय॥

चौथी बात यह है कि दुःख हमें सहानुभूति या हमदर्दीका पाठ पढ़ाता है। जिसने अपने किसी नजदीकी रिश्तेदारकी मृत्युका दुःख सहा है, वही जान सकता है कि दूसरोंको अपने समीपके सम्बन्धीकी मृत्युपर कितना कष्ट होता है। जिसके ऊपर मुसीबत आ चुकी है, वही दूसरोंकी मुसीबतमें उनके साथ आँसू बहा सकता है।

यह भी सच्ची बात है कि दुःख ही झूठे और सच्चे मित्रकी पहचान कराता है। खरे और खोटे सोनेकी पहचान पत्थरकी कसौटीपर या आगमें तपानेपर ही होती है। इसी प्रकार सच्चे मित्रकी पहचान विपत्तिरूपी कसौटीमें ही होती है। सुखमें साथ-साथ हँसनेवाले अनेक बनावटी दोस्त होते हैं, पर दुःखमें साथ-साथ रोनेवाला, आँसू पोंछनेवाला, घावपर मरहम लगानेवाला या सहानुभूति दिखानेवाला मित्र विरला ही होता है।

मैले कपड़ेकी मैल तभी उतरती है, जब वह उबलते हुए पानीकी गरमी और साबुनकी रगड़ सहता है—ऐसे ही दुःख खौलते पानीके समान हमारी मैल धो डालता है। जो दुःख सह चुकता है, वह नम्र और सहनशील बन जाता है। सच्चा सोना तो आगमें तपाये जानेपर भी खरा उतरता है। खानमेंसे निकलनेवाली धातुएँ—लोहा, ताँबा आदि भी जब कच्ची धातुके रूपमें होते हैं तो इनका कोई मूल्य नहीं होता। पर जब इन कच्ची धातुओंको पानी, एसिड, आग या अन्यान्य शुद्ध करनेवाली चीजोंकी सहायतासे शुद्ध कर लेते हैं, तभी ग्राहक इनको मुँहमाँगा दाम देनेको तैयार होते हैं। इसी तरह जो मनुष्य दुःखकी आगमें तप चुकता

है, वह उजला हो जाता है। इसलिये संत लोग दुःखके समय हाय-हाय नहीं करते; किंतु वे उसे अपने प्रियतमकी भेजी हुई भेंट समझकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं। हम भी यदि दुःख या पीड़ाको इस दृष्टिसे देखेंगे तो हम प्रत्येक भयानक-से-भयानक प्रतिकूल परिस्थितिमें भी अनुकूलताका अनुभव कर उसका प्रिय वस्तुके समान स्वागत कर सकेंगे।

# भारतीय धर्म तथा लोक-परलोकका प्रमाण

( लेखक—श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा )

आजके १९ वर्ष पूर्व 'कल्याण'(सौर आश्विन सं० २००८) के अङ्कमें श्रीसुदर्शनसिंहका एक महत्त्वपूर्ण लेख 'संस्कृतियोंकी जननी' प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया था कि भारतकी प्राचीन सभ्यता ही विश्वकी समूची संस्कृतियोंकी जननी है। उस लेखको पढ़कर शायद लोग भूल भी गये होंगे। भारतीय गौरव तथा गरिमाकी बात भारतीयोंको स्वयं याद नहीं रहती।

उस लेखके अनुसार यहूदी लोगोंके पूर्वज 'युदा'की संतान हैं—जो वास्तवमें यदुवंश है। तातार लोग 'अय' के वंशज हैं, अय पुरूरवाके पुत्र हैं। यदुके पौत्र 'हय' से चीनी वंश चला। राजा सगरने भवनोंको 'पल्ली' नगर बसानेको कहा। उसीसे पल्लीस्थान—फिलस्तान बना। मैंने इस विषयपर भारतस्थित यहूदी कौंसल श्रीयाकोव मॉरिसको पत्र लिखा और उनसे पूछा कि इस सम्बन्धमें उन्हें क्या कहना है? तीन सप्ताहतक उनके उत्तरकी प्रतीक्षा की; कोई उत्तर न मिला। निश्चयतः भारतीय शाखाका होना अब विदेशियोंको सम्मानजनक नहीं प्रतीत होता।

आजकलकी संकुचित राष्ट्रीयताकी भावनामें कोई राष्ट्र अपनी वास्तविकतासे कितना ही नेत्र मूँद लेना चाहे, सत्य छिपता नहीं। इसरायल सरकारद्वारा प्रकाशित 'एरील' नामक त्रैमासिक पत्रिकाके गत मास ( २५वीं संख्यामें प्रकाशित ) अङ्कमें १९वीं शताब्दिका एक चित्र छपा है। यहूदियोंके पैगम्बर एजेकीलके सम्मुख एक सुदर्शन चक्र और गरुड प्रकट हुआ। गरुडके चारों ओर अनुपम प्रकाश बिखरा हुआ था। उसी प्रकाशमेंसे एक सुन्दर हाथ निकला, जिसमें धर्मशास्त्रकी पोथी थी, जो एजेकीलको भगवान्‌ने दी। एक कोनेमें वायुदेवता वेगसे मुखसे हवा फेंककर अन्धकाररूपी मेघ उड़ा रहे हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि एरील अथवा 'आर्यल' एक नगरका नाम था, जहाँ यहूदी—ईसाईके पूर्वज डेविडने प्रथम प्रवास किया था। 'आर्यल' तथा 'आर्यावर्त' में कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता।

## अद्भुत खोज

हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें भारतीय संस्कृतिके विस्तार तथा प्रवाहकी जो बातें लिखी हैं, उनपर सबसे कम विश्वास आजके पढ़े-लिखे भारतीयोंका है। मनु आदिपुरुष थे, जिनकी हम संतान हैं, वे मिस्र 'प्रदेश'में रहते थे। पाताल-लोकमें बड़ी विकसित सभ्यता थी और जिस प्रकार सत्रहवीं-अठारहवीं सदीमें इंगलैंडसे निर्वासित लोग उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिकामें जाकर बस गये, उसी प्रकार हमारे देशसे भी जिन राक्षसों ( आततायियों ) को निकाला जाता था, वे पाताललोक चले जाते थे।

'यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ।' भगवतीने दुर्गासप्तशतीमें शुम्भ-निशुम्भके लिये कहा है। दक्षिण अमेरिकामें 'मय देश' ( मय दानव ) की जो लगभग १ लाख वर्ष पुरानी सभ्यताका पता अब चला है, उसने संसारको अचम्भेमें डाल दिया है। सूर्य भगवान्‌का विशाल मन्दिर, १८०० फुट ऊँचा शिवलिंग, वस्त्र, पठन-पाठन-सामग्री, विशाल भवन, दस्तकारी, पच्चीकारी, वास्तुकला—यहाँतक कि 'पञ्चाङ्ग' भी प्राप्त हो चुका है। इस सम्बन्धमें हम आगे लिखेंगे। पर हमारा समूचा प्राचीन इतिहास तभी महत्त्व रखता है, जब यह सिद्ध हो जाय कि पुराणोंमें वर्णित मानचित्र—देश तथा पहाड़ एवं राज्योंकी स्थिति सही है। एक अद्भुत खोजने सवा सौ वर्षके अनवरत परिश्रमके बाद इसे भी सिद्ध कर दिया है।

सन् १८वीं सदीकी बात है—दो सौ वर्ष पूर्वकी। तुर्की नौ-सेनाके प्रधान पीरी रईसके सामानके साथ, तोपकापीके राजभवनमें बहुत पुराने मानचित्र ( नक्शे ) बरामद हुए थे। इसीके साथ दो बड़े मानचित्र भूमध्यसागर तथा वर्तमान 'मृत-समुद्र' के क्षेत्रके थे। ये दोनों नक्शे

बर्लिनके सरकारी अजायबघरमें रख दिये गये, पर इन विचित्र नक्शोंको कोई समझ नहीं पाता था। युगोंके बाद ये मानचित्र अमेरिकाके विशेषज्ञ आर्लिंगटन मलारीको परीक्षणके लिये दिये गये। उनकी रिपोर्ट थी कि ये बहुत प्राचीन मानचित्र हैं और भूगोलके प्राचीन रूपको प्रकट करते हैं। उसके बाद अमेरिकन नौ-सेना विभागको यह काम सौंपा गया। तबसे बराबर अध्ययन होनेके बाद वह पुराना नक्शा पूरी तरहसे पढ़नेमें आ गया और सन् १९५२ में यह निश्चित हो गया कि वह प्राचीन मानचित्र लाख-दो-लाख वर्ष पूर्वके संसारकी एकदम सही तस्वीर है—भारत, मिस्र, एशियाके मध्यपूर्वके देश, जैसे ईरान, ईराक, अरब और यूरोप सब एक साथ मिले हुए हैं। अफ्रिकासे लेकर चीनतक भूमि है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा दक्षिण अमेरिका उतना बड़ा नहीं है, जितना आज है। उनका काफी अंश पानीमें था, पर उनकी शक्लसे ही वे पाताललोक प्रतीत होते हैं।

इस नक्शेकी सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि मिस्रकी राजधानी काहिरा और उसके चारों ओर ५००० मीलकी दूरी तक तो नक्शा बहुत स्पष्ट है। उसके बाद रेखाएँ धूमिल होती जाती हैं। लेखक डेनिकनका कथन है कि निश्चय ही यह वायुयानसे लिया गया नक्शा है, मानो उस समय हमारे पास वायुयान थे।

## ग्रह, नक्षत्र, गणित

गणितशास्त्रके श्रेष्ठ ग्रन्थ 'लीलावती'के देशवासी नयी शिक्षामें यह समझते हैं कि गणितशास्त्र यूनानसे आया और संसारमें फैला तथा ज्योतिषशास्त्र अरबसे। यह माननेमें उन्हें संकोच होता है कि हमसे उन देशोंने लिया। उसने और भी वृद्धि की। गणितशास्त्रकी सबसे महत्त्वपूर्ण खोज थी—दशमलव और उसे निकाला भारतीय गणितज्ञोंने। न्यूटनके 'गुरुत्वाकर्षण'के सिद्धान्तके १८०० वर्ष पहले गुप्त साम्राज्यमें पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिकी घर-घर जानकारी थी। जब ब्रिटिश लोग जंगली थे, सम्राट् समुद्रगुप्तने मुफ्त चिकित्सालय तथा रोगीको रखकर चिकित्सा करनेके लिये जगह-जगह अस्पताल खुलवाये थे। विश्वका पहला 'अस्पताल' भारतमें संगठित हुआ था।

अस्तु, ग्रह-नक्षत्रकी जो अनुभूति तथा गणना हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलती है, उसकी काफी खिल्ली हम स्वयं उड़ाते हैं, पर नवीनतम खोजोंने इन गणनाओंको सत्य सिद्ध कर दिया है। पेरु (अमेरिका) में पिछले १८–२० सालमें जो खुदायी हुई है, उसमें बड़ी अद्भुत चीजें प्राप्त हुई हैं। ८५० फीट ऊँचा शंकरका त्रिशूल मिला है। पासमें जो सड़क मिली है, वह ठीक हवाईजहाजके उतरनेके लिये बनी सड़क जैसी है। २४ फुट लम्बा तथा २० टन वजनका एक विशाल शिवलिंग मिला है, जिसपर ग्रह-नक्षत्र सब बने हुए हैं। मि० एच्० एस्० बेलामी तथा पी० अलानने तिआ-हुआनाको (पेरु) नामक स्थानसे प्राप्त इस शिवलिंग-पर एक पुस्तक ही लिखी है। सन् १९२७ में यह लिंग मिला था और इसपर बने हुए प्रतीकोंको लगातार चालीस वर्षतक अध्ययन करनेके बाद यह सिद्ध हुआ है कि मूर्ति २७,००० वर्ष पुरानी है। उस समय ग्रह-नक्षत्र आदिकी जानकारी थी। यहाँतक कि 'कलेंडर' 'तिथि-मान' भी था। उस जमानेकी गणना थी कि २८८ दिनमें पृथ्वी सूर्यकी ४२५ बारकी फेरी लगाकर सूर्यकी परिक्रमा करती है।

इस नगरमें अद्भुत वास्तुकला प्राप्त होती है। एक विशाल सूर्यद्वार है—१० फुट ऊँचा, १६½ फुट चौड़ा, एक ही पत्थरमें तराशा हुआ। वजन १० टन। इसपर तीन कतारमें ४८ प्रतिमाएँ बनी हुई हैं, जिनका नखशिख भारतीय है, आभूषण भी। इन्हीं प्रतिमाओंके लेखोंसे पता चलता है कि आकाशके वायुमार्गसे ओरियान (आर्या) नामक एक स्त्री पृथ्वीपर उतरी, ७० बच्चोंको जन्म देकर पुनः स्वर्ग चली गयी। इसीसे पृथ्वीपर मानवका जन्म हुआ। अब आदम-हौआ, मनु-इला या कश्यप-दिति-अदितिकी कथामें क्या अन्तर है ?

## गणित तथा इतिहास

पेरुमें ही नगर 'सचस्य हुआ मान' (सत्य हनुमान्) में २०,००० टन वजनका तथा चार मंजिल इमारत इतना ऊँचा बहु चित्रित शिवलिंग प्राप्त हुआ है। सुमेर सभ्यताकी प्राचीन गणनाएँ अद्भुत हैं। उनको ज्योतिषका अद्भुत ज्ञान था। उनके शिलालेखोंमें जो सितारे बने हैं, उनके चारों ओर भिन्न आकारके ग्रह बने हुए हैं यानी उनको ग्रह-नक्षत्रोंकी गतिकी भी जानकारी थी। उनकी ग्रह-नक्षत्रकी गणना तथा आजकी गणनामें केवल ४ सेकेंडका अन्तर मिलता है। प्राचीन यूनानी सभ्यताके गणितज्ञ १०,००० से अधिककी

संख्या नहीं गिन सकते थे, पर सुमेर सभ्यतामें १,९५,९५७-५२, ००,०००,००० ( पंद्रह अंक ) की गणना मिलती है। इनका लिखित इतिहास ४, ५६,००० वर्ष पुराना है। प्रथम दस राजाओंने ३५,००० वर्षतक राज्य किया तथा २३ नरेशोंने २४,५१० वर्ष ३ महीना, ३½ दिनोंतक। यह लिखित सुमेर इतिहास है। इससे पुराने दीर्घ-जीवनका भी अनुमान लगता है, जिस दीर्घ-जीवनकी बात हमारे पुराणोंमें भरी पड़ी है, पर इसकी खिल्ली उड़ायी जाती थी।

कोहिस्तान ( एशिया ) की कन्दराओंमें जो चित्र मिले हैं, उनसे पता चलता है कि १९,००० वर्ष पूर्व ग्रह-नक्षत्रोंकी स्थिति ज्ञात थी और उतनी ही पुरानी वह चित्रकला है। जो चीजें आजकी खोज समझी जाती हैं, वे १०,००० वर्ष पुराने खंडहरोंसे निकाली जा रही हैं, जैसे बगदादमें बिजलीकी सूखी बैटरी, मिस्र तथा ईराकमें बढ़िया तराशा हुआ स्फटिक शीशा, जिसका उपयोग चश्माके लिये होता है, दिल्लीका लौह-स्तम्भ, जिसपर किसी ऋतुका असर नहीं होता, सहारा ( मिस्र ) रेगिस्तानके तास्सिली नगरमें दीवालोंपर हजारों चित्र मिले हैं, जो हजारों साल पुराने हैं और उनमें आजकलके ढंगका कोट पहने हुए लोग हैं। भारतीय इतिहास तथा पुराणकी ऐसी कौन-सी वस्तु या कथा है, जिसे आज असम्भव तथा मनगढ़ंत कहा जाय !

प्रलयकी गाथा प्रत्येक धर्मग्रन्थमें है। आदिपुरुष तथा नारीकी कहानी भी समान रूपसे है। पुरानी बाइबिलमें डेविड तथा दानवका युद्ध है। हज़रत मूसाने कहा है कि 'हौवा ( इला ) ने आकाशमार्गसे आते हुए चार प्रकाशपुञ्ज चीलोंसे जुता हुआ देदीप्यमान विमान देखा था। विमान आदम ( मनु )के पास उतरकर आ गया।' आकाशसे विमान उतरनेकी कथा पेरुमें प्राप्त शिलालेखोंमें भी है। असीरियाके राजा असुर बनिपालके १२ लेख मिट्टीके टुकड़ोंपर खुदे हुए मिले हैं। शरीरभरमें बालवाले, बंदर-मुख 'एनकिट्' ( अंगद ) की वीरगाथा भरी पड़ी है, जिन्हें सूर्य देवने ( राम ) अपने वशमें कर लिया था। पाँचवें लेखमें गाथा है कि किस प्रकार एनकिट् ( अंगद ) देव-लोककी यात्रापर चले। पर आकाशवाणी हुईः—

'वापस जाओ, देहधारी देवलोक नहीं आ सकता।'

मय दानव पाताललोकमें रहता था। मय देशकी सभ्यता अब कल्पनाकी वस्तु नहीं है। दक्षिण अमेरिकामें मय-सभ्यताके अद्भुत भग्नावशेष मिले हैं, मिलते जा रहे हैं। वे अति विज्ञ तथा पण्डित लोग थे। उनके लेखोंसे यहाँतक मालूम हो गया है कि उनको दैत्योंके गुरु शुक्र और शुक्र ग्रहकी यहाँतक जानकारी थी कि शुक्रका एक वर्ष ५८४ दिनका होता है तथा पृथ्वीका एक वर्ष ३६५.२४२० दिनका होता है। यह दस हजार वर्ष पहलेकी गणना है। आजके विज्ञानने पृथ्वीका एक वर्ष ३६५.२४२२ दिनका निर्धारित किया है। इसमें एक बहुत ही मार्केकी बात है। मयकी गणनाके अनुसार समूचे ग्रहलोककी गति तथा परिक्रमाका योग अन्ततोगत्वा बराबर होता है, जो वास्तवमें सृष्टिके अखण्ड विधानको सिद्ध करता है। मयके गणितज्ञोंने ६ करोड़ ४० लाख वर्षतककी गणना कर दी है। न उन्हें 'कम्प्यूटर'की जरूरत पड़ी, न बिजलीके दिमागकी।

विमानका उपयोग मय करते थे। राम तथा भीमके द्वारा विमानके उपयोगकी हँसी उड़ाना आसान है; पर सुमेर, बैबीलोन, मिस्र, असीरियन-शिलालेखको कैसे झूठा कहा जाय ! तिब्बतके प्राचीन ग्रन्थ तन्तुप तथा कन्तुपमें विमान-का जिक्र है। ईसासे १५०० वर्ष पूर्व राज्य करनेवाले मिस्र-नरेश तयमोषि ( तत्त्वमसि ) तृतीयने आकाशसे तेजपुञ्ज विमान आते देखा—इसका लेख उपलब्ध है।

## प्राचीन ज्ञानका भण्डार

प्राचीन जगत्के विषयमें आज हमें इतना कम मालूम है कि हम आजके संसारको ही सब कुछ समझ बैठे हैं। आज जब हम जेरिकोमें १०,००० वर्ष पुरानी कब्रमें प्राप्त प्रमाण तथा ८,००० वर्ष पुराने पेरिस प्लास्टरके बने नर-मुण्ड देखते हैं, जब हम चीनके गोभी रेगिस्तानमें खारा-खोताके खंडहरोंमें प्राप्त १४,००० वर्ष पुराने वस्त्र तथा आभूषण देखते हैं या ११,००० वर्ष पुराने मिस्री मुर्दे खोद रहे हैं तो नेत्र आश्चर्यसे खुले रह जाते हैं। मिस्रमें महान् पिरामिडको अब हम समझ पाये हैं—ये जिस स्थानपर बने हैं—शासक खूफूका चियूपमें बना पिरामिड, वह पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणके केन्द्रबिन्दु हैं तथा समूचा भूगोल उसी स्थानसे एक सीधी रेखा खींच दी जाय तो दो टुकड़ेमें बँट जाता है। उस पिरामिडकी ऊँचाईको दस हजार लाखसे गुणा कर दे तो ठीक पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९ करोड़ ३० लाख मील निकल आयेगी। इसी मिस्रके विश्वविख्यात इतिहासकार तथा यात्री, यूनानी हेरोदोतुसने ११,३४० वर्ष पुरानी सभ्यताका वर्णन किया है। इसी इतिहासकारने

सुमेर जातिवालोंको मरदुक ( मारति ) अथवा ( मङ्गल )-पूजक लिखा है, जिनकी विशाल प्रतिमा स्वर्णकी थी— २४,०००सेर सोना एक प्रतिमामें।

आर्यदेव, इन्द्रदेवकी पूजा चारों ओर होती थी। पुराने 'नार्दक' तथा जर्मन लोग (इंगलैंडसे जर्मनी तक) थोर ( इन्द्र ) देवताकी पूजा करते थे, जो जलके देवता थे। वर्षा तथा अन्नके स्वामी थे। वज्र धारण किये हुए थे। प्रोफेसर कुहनने संस्कृत तनमित्तुको जर्मन 'वानेन तथा मेघनाथ' कहा है। सभी एक देव थे।

पर प्राचीन सभ्यताका ज्ञान लुप्त हो गया। नालन्द विश्वविद्यालयकी लाखों पुस्तकें खिलजी-नरेशने फूँक दीं। दक्षिण अमेरिकामें मय सभ्यताकी लाखों पुस्तकें ६३वें 'इंका'-नरेश पश्चकुटी चतुर्थने—क्रोधवश जलवा डालीं। सिकंदरियाके विशाल पुस्तकालयकी ५,००,००० पुस्तकें रोमन विजेताओंने नष्ट कर दीं। जो बची रह गयी थीं, उन्हें खलीफा उमरने जला दिया। यरुशलमके मन्दिरका पुस्तकालय विजेताओंने नष्ट कर दिया। लगभग २ लाख पुस्तकें उस मन्दिरके पुस्तकालयमें थीं। ईसासे २१४ वर्ष पूर्व चीनी सम्राट् चि हुआंगने अपने देशमें प्राप्त ज्योतिष तथा दर्शन शास्त्रके सभी ग्रन्थ जलवा डाले। ईसाइयों तथा मुसल्मानोंने धर्म-परिवर्तनके अपने अभिमानमें लाखों-लाखों प्राचीन ग्रन्थ नष्ट कर दिये।

फिर भी एक अद्भुत पुस्तक-संग्रह प्राप्त हुआ है। प्राचीन सुमेर लोग मिट्टीके पत्रपर लिखते थे। ऐसी ६०,००० पुस्तकें बगदादसे ९५ मील दक्षिणमें निपुर ( निपुण ) नगरमें एक साथ प्राप्त हो गयी हैं। ये रत्न भारतीय सभ्यताकी प्राचीनताको प्रमाणित कर देते हैं, यहाँ-तक कि महाप्रलयतकका वर्णन इनमें उपलब्ध है।

## परलोककी बात

बड़े-बड़े विदेशी विद्वान् अब भारतीय सभ्यता तथा प्राचीन अद्भुत वैज्ञानिक प्रगतिकी बात स्वीकार कर रहे हैं। एरिक फान डेनिकनकी पुस्तक 'वाज गाड ऐन एस्ट्रोनोट' ( क्या ईश्वर अन्तरिक्ष-यात्री था ? ) हालमें प्रकाशित हुई है और लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं। चार्ल्स सिथकी पुस्तक सन् १८६४में ही छप चुकी थी। पिरामिडके सम्बन्धमें बेलामी और अलॅन लेखकोंकी पुस्तक और होर ब्रिगरकी किताबोंने सभ्य जगत्की आँखें खोल दी हैं।

पर हम भारतीय सोचते हैं कि कहाँके अन्धविश्वासमें पड़े हैं। पृथ्वीलोकके अलावा कोई लोक नहीं है। कहीं कोई ऐसा ग्रह-नक्षत्र नहीं, जहाँ देव या दानव निवास करते हों। स्वर्ग तथा नरक एक कपोल-कल्पना है।

भगवान्‌की सृष्टिकी थाह पाना असम्भव है। यों आँखसे देखनेसे हरेकको लगभग ४,५०० तारे आकाशमें दिखायी पड़ते हैं। अच्छी दूरबीनसे २० लाख सितारे दिखायी देते हैं। बहुत-से तारे इतने दूर हैं कि सैकड़ों वर्षसे प्रकाश वहाँसे चला है, पर अभीतक हमारे पास नहीं पहुँचा है। प्रकाशकी गति १,८६,००० मील प्रति सेकेंड है, इसलिये एक प्रकाश वर्ष १,८६,००० × ६० × ६० × २४ × ३६५ मीलके बराबर हुआ। इस हिसाबसे १५ लाख प्रकाश वर्षकी दूरीमें केवल आकाशगङ्गा है, जो अँधेरी रातमें थोड़ी दूर फैली दिखायी देती है। ऐसी २० आकाश-गङ्गाओंका पता लग चुका है।

डा० एस० मिलर तथा डा० विली लेका कहना है कि इस पृथ्वीलोकके अलावा कम-से-कम १ लाख ऐसे ग्रह-नक्षत्र हैं, जिनपर प्राणी रहते हैं। पृथ्वीके प्राणियोंसे भी कहीं उन्नत अवस्थामें। पृथ्वीके रहनेवाले सोचते हैं कि बिना अद्रुजन ( आक्सीजन ) तथा नद्रुजन ( नाइट्रोजन ) के जीव नहीं रह सकता, यह मूर्खता है। उन प्राणियोंको इन चीजोंकी जरूरत ही नहीं है।

डा० ले कहते हैं कि आकाशगङ्गामें ३०० अरब तारे हैं। नवीनतम खोजके अनुसार १०००अरब तारे हैं। डा० लेके अनुसार कम-से-कम १८ करोड़ तारोंपर प्राणी अवश्य रहते होंगे। मानव-जैसे या उनसे भी उन्नत प्राणी १८,००० तारोंपर अवश्य रहते हैं। यदि यह मान लें कि इनमेंसे १ फीसदी तारोंमें जीव निवास करते हैं, तब भी १८० परलोक तो हो ही गये—कोई नरक होगा, कोई स्वर्ग।

विज्ञानके पण्डित डा० फान वन लिखते हैं—'मेरा ध्रुव विश्वास है कि मानवसे कहीं अधिक उन्नत प्राणी अनेक ग्रहोंमें निवास करते हैं। उनका वातावरण तथा उनका जलवायु हमसे बिल्कुल भिन्न है।'

भारतीय आर्य धर्म, प्राचीन सभ्यता, स्वर्ग-नरक, लोक-परलोककी हँसी उड़ानेवालोंके लिये इससे अच्छा और क्या उत्तर होगा ?

# चायका मूल्य

## [ कहानी—सत्य घटनाके आधारपर ]

( लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर )

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

श्रीभगवान्‌का यों मन-ही-मन स्मरण करते हुए सेठ धनदासजी मोटरसे उतर स्नेहियोंका विदाई-सत्कार स्वीकार करते हुए रेलके तीसरी श्रेणीके डिब्बेमें जा बैठे, उन यात्रियोंके पास, जो फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। प्रधान मुनीम दीनानाथजीने सामानकी व्यवस्था-हेतु ट्रेन थोड़ी देर रुकवा दी। पैसेमें बड़ी करामात है। एक अन्ध भिक्षुकने हाथ पसारे हुए कहा—'भला हो सेठ बाबाका, कुछ मिल जाय।' पर सेठजी सीटपर जा बैठे थे।

चौथे स्टेशनके प्लेटफार्मपर यह दृश्य सभीने देखा कि एक बेचारा चायवाला यात्रीसे चायके पैसे लेनेको गाड़ीकी धीमी गतिके साथ गिरता-पड़ता हाँफता भागा जा रहा है। पर माईके लाल यात्रीने उसे पैसे नहीं दिये, बल्कि उसकी व्याकुलताके दृश्यको खिड़कीमेंसे देखकर प्रसन्न होता रहा। ट्रेनने तीव्र गति पकड़ी। चायवाला अदृश्य हो गया। मालिकने उसके वेतनमेंसे २५ पैसे ले लिये। यात्रीके पास बैठे हुए एक हरिजन हरिभक्तको यह दृश्य देखकर मनमें बड़ा दुःख हुआ।

दिल्ली स्टेशनसे अपनी पेढ़ीपर जाते हुए सेठ-मुनीमने श्रीकृष्ण-प्रिया तरणिजा श्रीयमुनाजीके चलती मोटरमेंसे दर्शन कर—'कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं मुरारिप्रियस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम्।' कहते हुए उन्हें सभक्ति नमस्कार किया। 'अहा! प्रयागराजमें—जहाँ श्वेत गङ्गनीर एवं यमुन-नीलनीरका संगम हुआ है, वह अति मनोहर दृश्य देखते ही बनता है।' सेठजीकी इस बातको मुनीमजीने मानो सुना ही नहीं। उनका चेहरा तो उस समय न जाने क्यों एकदम उदास हो रहा था। सेठ धनदासने धर्मार्थकी मद-में ५००) रु० मासिकका खर्च और बढ़ा देनेकी स्वीकृति दी, तब मुनीमका मन अंदरसे इतना जरूर चाह रहा था कि इस निधिको १०००) रुपये कर दें, तो अच्छा।

अनमना मन, मुखकी विवर्णता, पश्चात्तापके चिह्न, चेहरेकी सिकुड़ी रेखाएँ—ये उदासीके भाव भला छिपते कबतक ? एक दिन धनदासजीने पूछ ही लिया—'मुनीमजी! पहले आपका मुखमण्डल पाटल-पुष्पकी किंजल्क मानो बिखेरता रहता था—अब यह कैसा क्या हो गया ?'

पहले तो दीनानाथने कारण बतानेमें आनाकानी की, परंतु सेठजीके बहुत आग्रह करनेपर धीरे-धीरे, रुकते-रुकते शब्दोंमें, डबडबायी आँखोंसे पश्चात्तापकी आह भरते हुए कहना आरम्भ किया—'कोटा स्टेशन-पर आपको स्पेशल चाय पिलाकर मैंने २५ पैसे बेईमानीसे बेचारे चायवालेको नहीं दिये। उलटे उसकी भागदौड़, चिल्लाहटभरी माँगको ट्रेनकी खिड़कीमेंसे देख-देखकर मैं मन-ही-मन हँसता रहा। किंतु जब मैं ट्रेनमेंसे उतरा तो मेरी जेबका ५००) रु० के नोटोंका बटुआ गायब था। मैं फौरन जान गया कि मुझे यह उसी बेईमानीका हाथोंहाथ फल मिला है।'

सेठजी मुस्कुराकर बोले—"मुनीमजी! यात्रामें असावधान रहना कभी अच्छा नहीं होता। कहा है—

'राह कहीं, राही कहीं, राहबर कहीं,
ऐसा भी सफर कामयाब होता है, कहीं !'

अब आप इतने शोकमग्न क्यों हैं ? मुझे आपकी ईमानदारी, स्वामी-भक्ति और वर्षोंकी निस्स्वार्थ सेवाएँ भलीभाँति ज्ञात हैं। कहते हो—'वेतनमेंसे थोड़ा-थोड़ा जमा कर ५००) रु०की पूर्ति कर दूँगा' तो क्या मुझे निरा धन-दास ही समझ रहे हो ? ऐसा कभी नहीं होने दूँगा। 'बनजारेके बैलके समान स्नेह-सम्बन्ध बड़ी कठिनाईसे जुड़ता है, उसे तोड़ना कभी अच्छा नहीं होता।'*आप ये ५००) रु० बट्टाखाते मँडवाकर चैनकी साँस लीजिये और आनन्द-पूर्वक पूर्ववत् काम कीजिये। देखते हो, भगवान् श्रीहरि अहैतुकी कृपासे प्रत्येक सौदेमें कितना-कितना धन प्रदान कर रहे हैं! तो क्या—

पानी बाढ़ो नावमें, घरमें बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

यह मैं क्यों न करूँ ?"

सेठजीकी इस उदारता, दरियादिली, गुणग्राहकता, वर्षोंके प्रेम-सम्बन्ध एवं ममत्व-अपनत्वका विचार करके दीनानाथ गद्गद होकर प्रेमाश्रु बहाने लगे।

परंतु उनके मनमें यह प्रश्न बराबर उठने लगा कि "मुझसे यह पाप हुआ ही क्यों ? मैं आस्तिक हूँ, करुणावरुणालय श्रीहरिसे डरता हूँ। फिर ? अरे हाँ, आज मैंने शुद्धाशुद्धका विचार न कर होटलमें भोजन कर लिया था। सम्भव है, यह उसीका कुफल है। 'जैसा खाओ अन्न वैसा बने मन्न।' परम सेवक-भक्त सेठजी-की महती कृपासे ५००) रुपये तो आये-गये हो गये, किंतु उन अन्याय, अधर्म, बेईमानी, दूसरेको दुःख देकर हानि पहुँचाकर, उसका दिल दुखाकर बचाये पचीस २५ पैसोंका प्रायश्चित्त कैसे करूँ ? यह तो जीवनमें अवश्य करना ही पड़ेगा!"

वही स्टेशन, वही प्लेटफार्म, उस चायवालेकी भागदौड़, स्वयंकी हँसी सभी बातोंकी स्मृति दीनानाथके मनमें हलचल मचाने लगी। पर, सौभाग्यकी बात हुई कि लौटते समय वही चायवाला स्टेशनपर चाय बेचता मिल गया। दीनानाथने उसे देखा तो मानो भगवान् मिल गये। पास बुलाकर चुपचाप २५) रु० देकर बिदा किया। मनमें इतना हर्ष माना कि मानो एक भारी पापका प्रायश्चित्त कर चुका हूँ। पर प्रेरणा हुई। लड़केको पुकारकर बुलाया और सेठजीसे परिचय कराकर उसे १०१) रुपये इनामके रूपमें दिलवाये।

× × × ×

भवनको आकर धनदास इस घटनाको भूले नहीं। उनके मनमें ग्लानि उत्पन्न हुई कि 'बिना पैसेकी चाय पीकर मानो मेरा नेम-धर्म बिगड़ गया है। इनाम देना मूल्य नहीं हो सकता। मैं भी मुनीमजीकी बेईमानीमें शामिल हूँ। तो भी दयानिधान भगवान् क्षमा करते हुए घरमें धनकी वर्षा करते हैं। क्यों न मैं २५ पैसेके बदलेमें २५ हजार रुपयोंकी लागतसे एक अनाथालय बनवा दूँ!'

सेठकी यह धर्म-भावना कार्यरूपमें परिणत हो गयी। अनाथालय बन गया और उसका सारा प्रबन्ध-कार्य मुनीम दीनानाथके ही सुपुर्द हुआ। समय निर्झर-जलकी भाँति बहते-बहते कुछ वर्ष बीत गये। सुकृतका पैसा, बिना कीर्तिकी चाहका काम, सुप्रबन्ध, दीनोंको सभी भाँति आराम पहुँचानेकी लालसा—इन सभी विषयोंकी चर्चा सर्वसाधारणमें दूर-दूरतक फैल गयी।

× × × ×

*जोड़े ज्यूही जोड़ बिणजारेके बैल ज्यूं।
तनक जोड़ मत तोड़ नातो तातो 'नागजी'॥
( नागजीका मारवाड़ी बोलीका सोरठा )

'ओहो ! कितना कष्टमय था जेल-जीवन ! वे दिन कितनी कठिनाईसे बीते । सच ही कहा है—

अय्याम मुसीबतके तो काटे नहीं कटते ।
दिन ऐशके घड़ियोंमें गुजर जाते हैं ॥

पर पाप-कर्मका भोग तो भोगना ही पड़ता है । दिन गिनते-गिनते छुटकारेका समय आया । परंतु अब भी क्या हुआ है । बुढ़ापा है । किंतु भरोसा एक उसी बिगड़ी बनानेवाले प्रभुका है ।'

इन विचारोंकी शृङ्खला बाँधे हुए अनाथालयमें भर्ती हुआ एक वृद्ध आकाशकी ओर हाथ पसारे हुए क्षमा-याचना कर रहा था—

या रब ! तबाहकारोंका तू कारसाज है ।
बन्देको नाज है कि तू बन्दानवाज है ॥

मुनीम दीनानाथने जब यह ध्वनि सुनी तो वृद्धको पास बुलाकर पूछा—भाई ! तुम जाने-पहचाने-से मालूम होते हो ?'

कृशकाय अनाथ वृद्ध बोला—'हाँ, मैं वही चायवाला हूँ, जिसे आपने २५ पैसेके बदले २५) रुपये चायके दिये थे; किंतु मैंने अज्ञानवश उनको बढ़ानेकी थोथी लालसासे एक स्थानपर चोरी कर काफी धन हथिया लिया । पता लग गया । कैद भोगनी पड़ी । वहाँसे छूटकर उदरपूर्ति-हेतु अब यहाँ आया हूँ ।'

यह कहते-कहते वृद्ध रामदीन रुक गया । फिर रोते-रोते बोला—'धर्मात्मा लोग दीन-हीन यांचकोंको धर्मार्थ पैसा देते तो हैं, पर वे उसका दुरुपयोग करके बुरी गतिको प्राप्त हो जाते हैं । ऐसे लोगोंके सुधारनेका कोई सामूहिक उपाय नहीं किया जाता, जिससे याचक सच्चे अर्थमें मानवोचित गुण प्राप्त करके देश, समाज एवं अभावग्रस्त लोगोंकी तन-मनसे सेवा करते हुए उद्यम-परिश्रमसे उपार्जनकर अपना जीवन-यापन करें ।'

मुनीमके मानसमें वृद्धकी इन बातोंके सुननेसे प्रेम, सहानुभूति, मानव-समानता, सेवा एवं श्रमकी महानताके उन्नत भावोंका उदय हुआ । लिपट गये वे रामदीनसे । सान्त्वना देते हुए बोले—'भाईजी ! लालच तो बुरी बला होती ही है । यह बड़े-बड़े ज्ञानियोंका मन चलायमान कर देती है । किंतु अब आप संतापको छोड़कर यहाँ आरामसे रहो ।'

इस प्रसङ्गके पश्चात् दीनानाथने यह नियम बना दिया कि 'अनाथालयके सभी अनाथ निरन्तर हरिभजन करते रहें और 'सब तज हरि भज'का पालन करें ।' तदनुसार होता है ।*

## बोलनेमें पाँच बातका ध्यान रक्खो

प्रत्येक मनुष्य अपनेको दूसरोंसे अधिक बुद्धिमान् समझता है और बात करते समय आवश्यकतासे अधिक बोल जाता है, जो लोगोंको अखरता है । इसलिये मनुष्य यदि बोलनेमें पाँच बातोंका ध्यान रक्खे तो बहुतसे संकटोंसे बच जाय । ( १ ) जहाँतक हो चुप रहे, काम पड़नेपर कार्यमात्रकी बात ही बोले । ( २ ) जोरसे चिल्लाकर या हुकूमतके ढंगसे न बोले । ( ३ ) अपनी या अपने पूर्वजोंकी बड़ाई न करे । पर यदि कोई दूसरा अपने लिये ऐसी डींग मारे तो उसको न बुरा कहे, न टोके । ( ४ ) अपने पड़ोसीकी, सिवा इसके कि जब उसकी प्रशंसा करनेका प्रसंग हो, कभी चर्चा ही न करे । ( ५ ) भगवान्‌की अपार दयाकी सदा चर्चा करता रहे और अवसर मिले तो विशेष लाभदायक मानकर भगवच्चर्चा सुने भी । ( स्पिरिच्युअल कंवट )

* इस कहानीमें पात्रोंके नाम बदल दिये गये हैं ।

# एक प्रश्नका उत्तर

( लेखक—श्रीलक्ष्मीनारायणजी शर्मा )

सफाई देना मुझे पसंद नहीं, परंतु आपको बतलाना भी आवश्यक है, इसलिये आपसे निवेदन कर दूँ कि मैं शास्त्रोंका ज्ञाता नहीं हूँ और संस्कृतका भी पण्डित नहीं हूँ। इसका मुझे दुःख है। श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतका स्वाध्याय करता रहता हूँ। इसी जानकारीके आधारपर आपसे निवेदन कर रहा हूँ।

( २ ) विश्व तथा इसके अंदर जो कुछ दृष्टिगोचर और अनुमानित है, उसका कारण पुरुष और प्रकृति है। जड-चेतन और दृश्य-अदृश्यकी प्रत्येक वस्तु, प्रकृतिके तीन गुण—सत्त्व, रज और तम—पाँच तत्त्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीका पुञ्ज है। पुरुष-परमेश्वर सबमें व्याप्त और सबका नियन्ता है। आदिसे अन्ततक यही व्यवस्था रहती है। अतः महाभारतकालमें ही नहीं, सब कालोंमें प्रतिक्षण और सब जगह अच्छाई और बुराई रहती है। यह दूसरी बात है कि कभी और कहीं सात्त्विक गुणोंका बाहुल्य होता है, कभी कहीं राजसका तो कभी कहीं तामसका बाहुल्य होता है।

( ३ ) मनुष्यके धर्म अथवा कर्तव्यके बारेमें मैंने पढ़ा है। मनुष्यके अधिकारका उल्लेख प्रभुके मुखारविन्दसे ही केवल एक स्थानपर मिलता है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते।' परंतु प्रभुने तुरंत ही बड़ी कठोर शर्त लगा दी है, 'मा फलेषु कदाचन।' अतः मनुष्य कोई भी कार्य करे—पापकी कमाई करे अथवा पुण्यकी—उसका फल देनेवाले एक वही हैं, वही हैं; क्योंकि 'कदाचन' शब्दका प्रयोग है। वे सबको स्वीकार करते हैं। यदि वे स्वीकार न करें तो उसका फल कौन दे। वे दयासागर इसीलिये हैं कि प्राणी जो कुछ करता है, उसे वे स्वीकार करते हैं। वे पूर्ण न्यायमूर्ति हैं। पुण्यात्मा-को पापके लिये क्षमा नहीं, पापात्माको पापके लिये अधिक दण्ड नहीं। इसीलिये वे निर्लिप्त हैं, आसक्तिसे रहित हैं। स्वीकार करनेका तात्पर्य केवल इतना है कि वे पूर्ण न्याय करते हैं। उन्होंने इसकी स्पष्ट घोषणा की है—

**न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।**

अतः भगवान् किसीके भागीदार, प्रेरक और आधार नहीं हैं।

( ४ ) मनुष्य जबतक कर्ममें अहंता रखता है, तबतक पुण्य-पाप कमाता है। अहंकारशून्य होनेपर ही कहा जा सकता है कि वह पुण्य-पाप नहीं कमाता है। तब वह परमहंस हो जाता है और संसारमें परमहंस कितने हैं, यह आप सोच सकते हैं। अधिक सात्त्विक कर्म करनेसे संत, अधिक राजस कर्म करनेसे सांसारिक और अधिक तामस कर्म करनेसे नीच-में गणना की जाती है। नीच भी कुछ सात्त्विक कर्म करता है; क्योंकि कर्मकी उसे स्वतन्त्रता है और प्रभु पूर्ण न्यायकारी उस नीचको उसका शुभ फल देते हैं, ऐसा मेरा विचार है। इसकी पुष्टि प्रभुके वचन—

**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**

—से हो जाती है। कर्ममें भावना प्रमुख है। दण्ड-विधानमें भी भावना ( इंटेन्शन ) को प्रमुख लिया जाता है। इस आधारपर यदि संत किसीसे पैसा लेकर अच्छे कार्यमें लगाते हैं तो ठीक ही है। हाँ, यह आवश्यक है कि उसके बुरे कर्मों-के लिये वे उसकी भर्त्सना भी करें और उसमें आसक्त न हों। यदि वे उसमें आसक्त हो जाते हैं तो उसके पाप-पुण्य-का भागीदार उनको बनना पड़ेगा। उन्हें तो प्रभुकी शर्तके अनुसार—

**अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।**<br>
**निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥**

—होकर कार्य करना चाहिये। अन्यथा इस पाप-पुण्य-के दलदलमें वे फँस जायँगे। उसके नखरेदार व्यञ्जनोंका रसास्वादन करनेसे, उसकी कीमती मोटरोंमें घूमनेसे और हवाई जहाजोंमें उड़ते रहनेसे वे निश्चित भागीदार होंगे, फँसेंगे और महापुरुषोंके शब्दोंमें उनकी दशा उस कुत्तेकी होगी जो अपनी उलटी वस्तुको स्वयं फिर खा लेता है; क्योंकि वे उसमें आसक्त होकर फिरसे वित्तैषणा, पुत्रैषणा और लोकैषणामें फँस जायँगे। उनको शुभ कार्यके लिये पैसा लेकर उस कार्यमें लगा देना चाहिये और उसमें आसक्तिको छोड़कर अपने लिये अन्नादि ग्रहण नहीं करना चाहिये। भीष्मपितामहके वाक्य सदैव सत्य हैं।

( ५ ) यह कहना न्यायसंगत नहीं है कि सभी धनवान् पापका पैसा कमाते हैं और सभी गरीब पुण्यात्मा हैं। हर वर्गमें, समाजमें और घरमें—दोनों प्रकारके व्यक्ति मिलेंगे। सच्चे संत, प्रचारक, भक्त और विद्वान् कोई भेद-भाव नहीं बरतते। उन्हें शुभकार्यसे मतलब रहता है। वे किसीमें

आसक्त नहीं होते। यह सत्य है कि लोकैषणाके शिकार होकर कुछ लोग भटक जाते हैं। आज चारों ओर भौतिकवादका प्रचार है, इसके लिये स्पर्धा है। निरासक्त रहनेका प्रयत्न करनेवाले भी इस आगमें झुलस जाते हैं। इस आगकी तापसे जितनी दूर हो सके, उतनी दूर रहकर सज्जन पुरुष कार्य कर सकें, तो ही अच्छा है।

दैवी और आसुरी विचार संसारमें सदैव रहे हैं, सदैव रहेंगे। ये बढ़ते-घटते अवश्य रहते हैं। मनुष्यका परम कर्तव्य है कि वह दैवी विचारोंको ग्रहण करे और उनके प्रचार-प्रसारमें यथाशक्ति सहयोग करे। निराश होकर बैठे नहीं।

( ६ ) प्रिय महोदय! अब मैं कुछ आपसी बात भी कह लूँ। आपका प्रश्न एक सच्चे व्यावहारिक साधकका आन्तरिक प्रतिद्वन्द्व है। मैं स्वयं आपके प्रश्नके आन्तरिक भावसे पूर्ण सहमत हूँ। हालाँ कि न तो मैं साधक हूँ और न पण्डित। मैं एक कर्मचारी हूँ। ईमानदारीसे जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न करता हूँ। कभी-कभी संतकी खोजमें भटकता था, परंतु आपके द्वारा व्यक्त विचार—संघर्ष कहीं जमने नहीं देता था। आजके प्रसिद्ध वैष्णव, संन्यासी-संतोंके पास भी आपके द्वारा व्यक्त विचारोंके कारण मुझे संतोष न मिला। अन्तमें मुझे दो महानुभावोंके दो वाक्यों तथा श्रीमद्भागवत और महाभारतमें वर्णित दो उपदेशोंसे शान्ति मिली। आपद्वारा उठाये गये प्रश्नका समाधान सम्भवतः इन वाक्योंसे हो जाय।

( ७ ) सन् १९४८ में 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ' के सत्याग्रहके सम्बन्धमें मैं नैनी जेलमें था। सभी स्वयंसेवकोंके भोजनका प्रबन्ध करनेकी सेवा मुझे मिली थी। मैंने प्रचारक-वर्गको अन्य लोगोंसे अधिक घी लेते देखा तो मेरा मन क्षुब्ध हो उठा। मैंने इसकी शिकायत जेलमें स्वयंसेवकोंके सर्वोच्च अधिकारी, श्रीराजेन्द्रसिंहजी प्रोफेसरसे, जिन्हें 'रज्जू भैया' कहते थे, की। ये बड़े सरल स्वभावसे बोले, 'पण्डितजी! आप प्रबन्धक हैं। आप उनको ऐसा करनेसे तुरंत रोक दीजिये।' मैंने ऐसा ही किया और सफलता मिली; परंतु कुछ नैराश्य छा गया। एक दिन रज्जू भैया फिर बोले—'प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण आदर्शका पालन नहीं कर सकता। श्रेणियाँ होती हैं। संसारमें सभी रहते हैं। बुद्धिमत्ता इसमें है कि अच्छाई ग्रहण करे और किसीकी कमीके कारण उससे घृणा न करे।' मेरा समाधान हो गया। एक दिन खीर बहुत अच्छी बनी थी। सबको एक-एक प्याला दी गयी। रज्जू भैयाके लिये मैं स्वयं दो प्याले खीर लेकर देने गया। वे बोले—'आज बहुत-बहुत खीर ॅटी है।' मैंने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'सबको एक-एक प्याला मिली है। आपके लिये दो प्याले लाया हूँ।' बस, रज्जू भैयाकी चेष्टा बदली और वे गम्भीर होकर बोले—'पण्डितजी! आप और मेरे लिये दो प्याले लेकर आये हैं!' मैं जमीनमें गड़ गया। मेरे पास शब्द न थे। चुपकेसे खीर वापिस लेकर लौट गया। फिर एक प्याला भेजी। यह है उज्ज्वल चरित्र और आदर्श जीवन। इसीको व्यावहारिक आदर्श जीवन कहते हैं। यह छोटी-सी घटना मुझे जीवनमें जाग्रत् रखती है, हालाँ कि रज्जू भैयासे मेरा सम्पर्क छूटे २२ वर्ष हो चले।

( ८ ) मुझे जब प्रसिद्ध संतोंके पास संतोष न मिला तो मैंने प्रतिमास श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा प्रारम्भ की। लगभग नौ वर्ष पश्चात् एक बंगाली महान् संतके दर्शन हुए। वे त्यागकी मूर्ति हैं। किसीसे कोई वस्तु नहीं लेते। रात्रिको पासके ग्राम जतीपुरासे मधुकरी माँगकर पाते हैं और उन्हीं गृहस्थोंके चिथड़े लेकर पहनते हैं। उनके दर्शनसे मुझे बड़ी शान्ति मिली। जिसके हाथमें माला न हो, उससे केवल तीन वाक्य बोलते हैं—'परिक्रमा देने आये हो? कहाँसे आये हो? जाओ।' अन्तिम वाक्यके पश्चात् कोई ठहर नहीं पाता। यदि माला हो तो दो-चार मिनट उपदेशके शब्द बोलते हैं। वैसे उनका दर्शन ही उपदेश है। मेरी प्रबल इच्छा रही कि मैं उन्हें कोई वस्तु दे सकूँ। परंतु असफल रहा। संस्कृतके विद्वान् हैं। खैर, एक बार मैं थोड़ी-सी मिश्री लेकर गया। मैंने प्रार्थना की—'आप प्रातः भगवान्के भोगके लिये यह मिश्री स्वीकार कर लें तो बड़ी कृपा हो।' वे पागलोंकी तरह हँसने लगे और बोले—'तुम मुझे फँसाना चाहते हो। हम स्वतन्त्र जंगली साधु हैं। तुलसीदल और जलका भोग लगाते हैं। अन्य वस्तुसे हम किसीके आश्रित हो जायँगे।' प्रत्येक मास जाता रहा। उनसे विदा लेते समय मन दुखी होता था कि मैं कोई सेवा न कर सका। एक बार स्वयं बोले—'हम कोई वस्तु नहीं लेते, इससे तुम दुखी हो।' मैंने कहा—'जी महाराज!' गम्भीर होकर बोले—'सत्य बोलना। पापका पैसा तो नहीं कमाते हो?' मैंने कहा—'महाराजजी! मैं पापका पैसा नहीं लेता।' अब वे सरल स्वभावसे बोले—'भैया! हम व्रजके बाहरकी भिक्षा नहीं लेते। एक काम करो, हमारे लिये श्रीमद्भगवद्गीताका श्रीचक्रवर्तीका भाष्य मँगा

देना।' शास्त्रोंमें वर्णित संत ऐसे होते हैं। एक बार मेरी पत्नीके प्रश्न करनेपर खड़े-खड़े दो मिनटके उपदेशमें कहा—'देखो, स्त्रीके लिये गुरुकी बिल्कुल कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई स्त्रीके लिये गुरुकी कहे तो वह धूर्त है, चाहे वह कोई हो। पुरुषको गुरु मिलना कठिन है। मिल जाय तो उसमें कभी भी दोष-दृष्टि होनेसे घोर पाप लगता है। इसलिये श्रीराधेगोविन्दको गुरु मानो। वे तुम्हारा पथ-प्रदर्शन अवश्य करेंगे। विश्वास रक्खो। श्रीराधेगोविन्द ही सबके सच्चे गुरु हैं। वे भवसागर पार लगायेंगे। जाओ।' ये हैं सच्चे संत—जो त्यागकी मूर्ति होते हैं। बाकी क्या हैं, यह मैं आपसे पहले निवेदन कर चुका हूँ।

(९) महाभारतमें कलियुगका वर्णन करते समय यह प्रश्न उठा है कि 'इस कालमें उत्थानका क्या मार्ग होगा?' उसके उत्तरमें कहा गया है कि 'सामूहिक उत्थान कठिन है। मनुष्यको अपने-आपको सँभालना चाहिये। उसीसे समाज और देशके उत्थानमें सहयोग हो सकेगा।' अतः अपनी चुंदरिया देखिये कि उसके दाग धुल जायँ और नये दाग पड़ें नहीं। दूसरे आपको देखकर सुधार करेंगे इसमें कोई संदेह नहीं।

(१०) श्रीमद्भागवतमें गुरुका महत्त्व बताते हुए कहा है कि 'कलियुगमें गुरु मिलना दुर्लभ है, इसलिये श्रीगोविन्दको गुरु मानिये। वे आपका पथ प्रदर्शन करेंगे और आपको भवसागरके पार ले जायँगे।'

(११) यदि आपका प्रश्न एक साधकका अन्तर्द्वन्द्व है तो मुझे आशा है कि आपको कुछ समाधान, कुछ शान्ति मिलेगी। परंतु यदि आपका प्रश्न राजनीतिक, मानसिक परेशानी है तो इस लंबे पत्रके पढ़नेमें आपके अमूल्य समयके व्ययका मुझे दुःख है और निवेदन है कि आप इस अपव्ययके लिये मुझे क्षमा करनेकी कृपा करें।

# साधुताके लक्षण

(लेखक—श्रीहरिकिशनदासजी अग्रवाल)

साधुका मुख्य लक्षण यह है कि वह सदा अपने स्वरूपका अनुसंधान करता रहता है और सब लोगोंमें रहकर भी सबसे अलग रहता है। ज्यों ही उसकी दृष्टि अपने स्वरूपपर पड़ती है, त्यों ही उसकी सारी चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं। सिद्धलोग बाहरसे देखनेमें तो सीधे-सादे जान पड़ते हैं, पर उनका आत्मस्वरूप परमात्मस्वरूपमें ही लीन रहता है। संदेहरहित साधन ही सिद्धोंका लक्षण है और उनके अन्तःकरणके बाहर-भीतर अचल समाधान रहता है। अंन्तःकरणकी स्थिति अचल हो जानेपर फिर उनमें चञ्चलता नहीं रह जाती। जब उनकी वृत्ति सत्स्वरूपमें लग जाती है, तब वह सत्स्वरूप ही हो जाती है। वृत्तिमें किसी प्रकारका अलगाव नहीं रहता। साधु चलते रहनेपर भी अचल और चञ्चल रहनेपर भी निश्चल रहता है। जब वह सत्स्वरूपमें मिलकर सत्स्वरूप हो जाता है, तब वह चाहे कहीं पड़ा रहे, अथवा वहाँसे उठकर किसी अन्य स्थानपर चला जाय, वह वास्तवमें अचल ही रहता है। चञ्चलता मनकी स्थितिपर आधारित है। जिसका मन चञ्चलतासे निवृत्त होकर ईश्वरमें लग गया है, वही साधु है। साधुका बाहरी रूप और कार्य चाहे जैसा हो, पर उसका मन सत्स्वरूपमें लगा रहता है। इस समय इस प्रकारके साधु बहुत कम होंगे, किंतु कहीं-कहींपर कोई छिपे हुए साधु मिल ही जाते हैं। उनकी वृत्ति निर्गुणमें लगी रहती है और वे नित्य-निरन्तर अविरल भावसे अपने स्वरूपमें स्थित रहते हैं। साधुकी कल्पना जब लीन हो जाती है और वह जब स्वरूपमें स्थित हो जाती है, तो उसमें कामना रह ही नहीं जाती। साधुकी सम्पत्ति अक्षय होती है, इसलिये उसमेंसे कुछ सम्पत्तिका नुकसान होनेपर भी उन्हें क्रोध नहीं आता। उनका किसीपर अपना अथवा पराया भाव नहीं; वे सदैव अपने आनन्दमें मग्न रहते हैं। वहाँ किसी प्रकारका वाद-विवाद नहीं रह जाता। साधुमें मत्सर होता ही नहीं, साधु तो अनायास ही ब्रह्मस्वरूप होता है। साधु स्वयं आनन्दस्वरूप होता है। इसलिये उसमें दम्भ कैसे हो सकता है? साधुमें द्वैत होता ही नहीं। साधुने द्वयोंको बिल्कुल नष्ट कर दिया। उसके सामने प्रपञ्च ठहर ही नहीं सकता। साधु निष्प्रपञ्च है। साधुका घर सारा ब्रह्माण्ड है। वह इस पाञ्चभौतिक विस्तारको मिथ्या समझकर छोड़ देता है। साधुमें लोभ नहीं होता। साधुकी कामना शुद्ध स्वरूपमें मिलकर ठीक उसीके समान हो जाती है। साधु सदा शोकरहित रहता है। वह समझता है कि सब कुछ अपना-आप

ही है, तब उसे किस बातका कैसा दुःख ? साधु सदा नश्वर दृश्यको छोड़कर शाश्वत स्वरूपमें स्थित रहता है । साधु शोकातुर नहीं होता । उसकी वृत्ति निवृत्त हो जाती है, इसलिये साधु कल्पनारहित रहता है । साधु मोहजालमें नहीं फँसता; वह मोहातीत है । साधु अभयपदको प्राप्त होता है, अतः उसे भय होता ही नहीं । संसारमें सबका अन्त होता है, पर साधु अनन्त है । जो सत्य स्वरूपमें मिल अमर हो गया हो, उसका अन्त कैसे हो सकता है ? साधुमें द्वन्द्व-भेद नहीं होता । उसमें देहबुद्धिका खेद नहीं, अतः वह अपने ही अभेदमें मग्न रहता है । साधुकी बुद्धिमें निर्गुण निश्चित होता है और वह निर्गुण उससे कोई छीन नहीं सकता । वह स्वयं अकेला ही होता है, इसलिये उसे दुःख और भय नहीं होता । साधु आकाशकी तरह विस्तृत होता है, अतः उसमें सीमा नहीं होती । साधु सदा वीतराग, सब प्रकारके राग-द्वेषसे रहित रहता है । साधुकी स्वरूप-स्थिति हो जानेसे शरीरकी चिन्ता छूट जाती है; भविष्यकी कोई चिन्ता उसे नहीं रह जाती । साधु मान-अपमानसे परे होता है । साधु अलक्ष्यकी ओर अपना लक्ष्य रखता है, इसलिये वह परमात्म-स्वरूप होता है । साधु ब्रह्मस्वरूपमें मिल जाता है, इसलिये वह निर्मल होता है । उसमें धर्म-सम्प्रदायके बारेमें मतभेद नहीं होता । वह ब्रह्मके स्वरूपमें स्थित रहना ही धर्म समझता है । साधुका यही मुख्य लक्षण है । ऐसे अनुभवी साधुकी संगति करनेसे मनुष्यमें जिज्ञासा जाग्रत् होती है और उसे स्वरूप-स्थितिकी प्राप्ति होती है । जो संतका सत्सङ्ग करता है, वही सत्सङ्ग करता है । अध्यात्मका निरूपण सुनते-सुनते मनुष्यमें साधुके लक्षण आ जाते हैं ।

साधु वह है, जिसका मन मननशील और मौन है । साधु किसी-जैसा नहीं होना चाहता, बल्कि जो वह है, वैसा ही जानना चाहता है । साधु किसी प्रक्रिया-क्रियासे बँधा नहीं होता, वह स्वतन्त्र है । साधु पग-पगपर परमात्माका अनुभव करता है और जगत्के सभी प्राणी उसको परमात्म-स्वरूप नजर आते हैं । साधुकी दृष्टिमें कोई पापी नहीं, वह सबको निष्पाप समझता है ।

साधु भूत-भविष्यका विचार न कर वर्तमानमें जीता है, वह अपने कर्तव्यका सहज पालन करता है । साधुसे लोकहित अनायास ही होता है; क्योंकि वह सहज ही परम कृपालु और परम दयालु होता है ।

# क्रोधकी परीक्षा

एक सज्जनको कभी भी क्रोध नहीं आता था । कुछ लोगोंने उनकी परीक्षाके लिये उनके पुराने निजी नौकरसे कहा कि 'तुम यदि एक क्षणके लिये भी उन्हें क्रोध दिला दोगे तो तुम्हें बड़ी रकम इनाममें दी जायगी। नौकर जानता था कि उसके मालिकको यदि पलंगपर बिछौना सिकुड़ा या टेढ़ा-मेढ़ा बिछा दिया जाय तो नापसंद होता है, अतः उसने क्रोध दिलानेके लिये रातको बिछौना ठीक नहीं बिछाया । सवेरे उन्होंने पूछा तो नौकरने कह दिया—'मैं भूल गया था ।' दूसरे दिन और भी बुरी तरह बिछौना लगाया । सवेरे जब मालिकने अपनी सहज शीतल वाणीसे पूछा तो नौकर बोला कि 'समय नहीं मिला था ।' तीसरी रातको फिर वैसा ही किया और सवेरे जब डरता हुआ वह मालिकके सामने गया तो उन्होंने मुसकराकर कहा कि 'मालूम होता है कि तुम मेरी इस आदतको नापसंद करते हो । पर डरो मत । मेरी आदत अब यों ही सो रहनेकी पड़ती जा रही है ।' यह सुनकर नौकर लज्जित हो गया और उसने चरणोंपर गिरकर सारा विवरण कह सुनाया। वे सुनकर हँसने लगे ।

# परमार्थकी पगडंडियाँ

मनुष्य परिस्थितिपरवश होता है। उसकी स्थितिपर विचार करना चाहिये, क्रियापर नहीं। मनुष्य कभी-कभी ऐसे कर्म कर बैठता है, जिनको वह स्वयं करना नहीं चाहता और करनेपर पछताता भी है।

प्रतिकूलतामें प्रभु-कृपाका दर्शन करनेके सिवा दुःखनाशका और सहज उपाय नहीं है। मनकी स्थिति समझकर, मनको तो ठीक करना ही पड़ेगा। प्रतिकूलता तो रहेगी ही। किसीको भी आजतक सम्पूर्ण अनुकूलताएँ नहीं प्राप्त हुई। अतः प्रतिकूलतामें अनुकूल भावना करके ही प्रतिकूलताको मिटाना पड़ेगा। प्रत्येक परिणामको परम सुहृद् भगवान्‌की कृपाका विधान मान लेनेपर प्रतिकूलता अनुकूलतामें परिणत हो जाती है, पर इसके लिये भगवान्‌की कृपापर, उनके कृपारचित विधानपर अटल विश्वास और भरोसा होना चाहिये। मनमें कभी निराशा, उदासी और भय आवे तो उसी समय भगवान्‌की मङ्गलमयी कृपाका स्मरण करना चाहिये। निश्चय करना चाहिये—भगवान्‌की हमपर बड़ी कृपा है। भगवान्‌के साथ चित्तका सम्पर्क दृढ़ हो जानेपर अपने-आप ही परम प्रसन्नता आ जाती है।

× × × ×

जबतक यह प्रतिकूलताका काल्पनिक स्वरूप हमारे सामने है और हम इससे दुखी होते हैं, तबतक हमारा भगवान्‌पर विश्वास नहीं है। जबतक भगवान्‌में पूर्ण विश्वास नहीं है—भगवान्‌को हम अपना नहीं मानते—तबतक दुःख नहीं मिटेंगे।

अँधेरेसे अँधेरा कैसे मिटे? चोरोंको निकालनेका प्रयत्न करें और चोरोंके ही गिरोहमें निवास करें। इसलिये यदि दुःखोंसे छूटना हो तो भगवान्‌में विश्वास करना होगा, भोगोंमें नहीं।

कैसी बेतुकी बात है कि हम उन भगवान्‌पर विश्वास नहीं करते, जिनपर सारी सृष्टि, सारा ब्रह्माण्ड टिका हुआ है, जो सबका शासन-संरक्षण करते हैं, जो सर्वशक्तिमान् हैं। जो इतने महान् होते हुए भी हमारे सुहृद् हैं। उन भगवान्‌पर हमारा विश्वास नहीं है। हमारा विश्वास है—जगत्‌के क्षणभङ्गुर भोगोंपर, जिनका अन्त—भयंकर दुःख, क्लेश, व्याधियोंसे भरा हुआ है।

हम सुखके रास्तेपर ही नहीं हैं। भोगोंमें सुख है, हमारी यह दृढ़ आस्था है। वस्तुतः भोग हैं 'दुःखयोनि'। उन दुःखमय भोगोंमें हमने सुखकी कल्पना कर रक्खी है। दुःखमें ही हमारे सुखकी भ्रान्त धारणा अवलम्बित है। तब सुख मिले कैसे? दुःखोंसे छुटकारा पाना हो तो हमें भगवान्‌में ही सुख मानकर दृढ़ताके साथ भगवान्‌पर तथा उनकी कृपापर विश्वास करना होगा, उनकी शरणागति स्वीकार करनी होगी; उनपर सर्वथा निर्भर हो जाना पड़ेगा।

× × × ×

अपुनपौ आपुनहीं बिसर्‌यौ। जैसे स्वान काँच-मंदिर मैं भ्रमि-भ्रमि भूकि मर्‌यौ॥
ज्यौं सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूँघि फिर्‌यौ। ज्यौं सपने मैं रंक भूप भयौ तसकरि अरि पकर्‌यौ॥
ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूप पर्‌यौ। जैसे गज लखि फटिक-सिला मैं दसननि जाइ अर्‌यौ॥
मरकट मूँठि छाँड़ि नहिं दीनी घर घर द्वार फिर्‌यौ। सूरदास नलिनी के सुवटा कहु कौनैं पकर्‌यौ॥

—हमने अपना ही बन्धन अपने लिये बना रक्खा है—अपने ही मोहपाशमें हम बँध रहे हैं। अपने-आप हम दुःखको बुलाते हैं और फिर रोते हैं। यदि हम अनुभव करें कि हम भगवान्‌के आनन्दसे निकले हैं, आनन्दमें स्थित हैं और भगवान्‌के आनन्दमें ही चले जायँगे तो दुःख रहे ही नहीं। हम अपनी असली चीजको तो भूल गये और जगत्‌के मिथ्या आनन्दमें, क्षणिक सुखमें विश्वास कर बैठे हैं। अनेक-अनेक जन्मसे हम इसी भ्रान्तिके जालमें फँसे हुए हैं—भोगोंमें, दुःखोंमें सुखकी आशा कर रहे हैं और

मृगतृष्णाकी भाँति भटक रहे हैं। यदि हमें इस गोरखधंधेसे बाहर आना है तो एकमात्र उपाय है—'भगवान्पर विश्वास।'

× × × ×

जब हम स्वयं ठीक हो जायँगे तो हमारे सम्पर्कमें आनेवाले भी स्वतः ठीक हो जायँगे।

तेरे भावैं जो करौ भलौ बुरौ संसार। 'नारायन' तू बैठिकै अपनौ भवन बुहार॥

—किसीको उपदेश देनेकी आवश्यकता नहीं है, किसीकी ओर ताकनेकी भी आवश्यकता नहीं है। हमें तो सबसे पहले अपने-आपको सुधारना है। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु जब मस्त होकर कीर्तन करते थे, तब कीर्तनमें इतने तल्लीन हो जाते थे कि अपनी सुध-बुध खो देते थे। जो भी उनके साथ कीर्तन करता, वह भी अपनी सुध-बुध खो बैठता। इसी प्रकार हमें दूसरेकी बुराइयोंको न देखकर सबसे पहले अपने दोषोंको देखना तथा उन्हें निकाल बाहर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। दूसरोंके दोषोंको देखते-देखते जीवन निकल जायगा। न तो अपना सुधार हो सकेगा, न दूसरोंका।

× × × ×

नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण करते रहना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि श्रीभगवान् अत्यन्त कोमलस्वभाव, दीनबन्धु, पतित-पावन हैं। वे सहज ही क्षमाशील हैं। अपनी भूलोंके लिये पश्चात्ताप करते हुए हम उनकी दयालुतापर विश्वास करके उनके शरणापन्न हो जायँ तो वे हमें तुरंत अपना लेते हैं। वे कुछ भी दोष-अपराध नहीं देखते। वे अकारण कृपालु तथा सहज सुहृद् हैं। अतएव उनके शील-स्वभावकी ओर देखकर निरन्तर उनके शरणापन्न हो रहना चाहिये। जहाँतक बने, मनमें सांसारिक वासनाका—इन्द्रिय-तृप्तिकी इच्छाका लेश भी नहीं आना चाहिये। यह बहुत बड़ी बाधा है, इससे सदा बचना चाहिये और सब कुछ भगवान्के अर्पण करके उन्हींकी स्मृतिमें चित्तको अखण्डरूपसे लगाये रखना चाहिये। मनको कभी निराश, उदास, विषादग्रस्त नहीं होने देना चाहिये। भगवान् कहते हैं—'मा शुचः' 'मत शोच कर।' फिर भी यदि हम शोच करते हैं तो दो ही बात हैं—या तो हम शरणापन्न नहीं हैं, या उनपर हमारा विश्वास नहीं है।

× × × ×

भगवान्के हृदयमें रहनेपर कामना-वासनाका वैसे ही नाश हो जाता है, जैसे धनके प्राप्त हो जानेपर निर्धनताका। तथापि जबतक उस धनका प्रत्यक्ष बोध नहीं हो जाता, तबतक निर्धनता दीखती है। इसी प्रकार हमारे मनमें भगवान्के आ जानेपर भी, उनका मङ्गलमय स्पर्श सदा न होनेके कारण कभी-कभी कलुषित चीजें दिखायी दे जाती हैं, पर वस्तुतः यह कलुष नहीं है। भगवान्की मधुर मनोहर सत्ता ही इस रूपमें दिखायी देती है।

अपनेमें हीनताका बोध तो शुभ लक्षण है। यह प्रेम-साम्राज्यके विशुद्ध भावका एक निदर्शन है—

मिलना और बिछुड़ना जगमें है निश्चय प्रारब्धाधीन।
किंतु चित्तका स्मृति-सम्मेलन रहता नित अन्तरसे हीन॥
बढ़ती रहती ममता प्रतिपल रहता चित्त दिवस-निशि लीन।
होता नित्य-निवास हृदयमें रहती जैसे जलमें मीन॥

× × × ×

बड़भागी वही है, जो भगवच्चरणानुरागी है। अपने भाग्यको कभी कोसना नहीं चाहिये। अधिक-से-अधिक भगवत्प्रेमका रसास्वादन कर अधिक-से-अधिक सद्भाव प्राप्त करो।

हमें अपनी ओर देखकर कभी निराश नहीं होना चाहिये। वरं सदा-सर्वदा भगवान्‌की अहैतुकी कृपा तथा प्रीतिकी ओर देखकर परम आश्वस्त तथा निश्चिन्त रहना चाहिये।

सूर्यके सामने जैसे गहरे-से-गहरा अन्धकार नहीं टिक सकता, इसी प्रकार भगवत्कृपाके सामने हमारी कोई भी अयोग्यता नहीं ठहर सकती। भगवान् अकारण सुहृद् हैं। वे हमारी ओर देखकर नहीं, अपने स्वभावसे ही, सहज ही; प्रीति तथा कृपा करते रहते हैं। हमें उनके सहज सौहार्दपर विश्वास होना चाहिये। यह विश्वास ही पात्रता है।

× × × ×

जो भगवान्‌का हो गया, जिसके भगवान् हो गये, उसपर दूसरे किसीका अधिकार-प्रभुत्व-प्रभाव कैसे रह सकता है ? तुम अपने मनमें निश्चय करो—प्रभुके रहते तुम्हारे पास पाप, ताप, अशान्ति, जलन, दोष, दुर्विचार, शोक, भय, विषाद आदि आ ही नहीं सकते। इनको ललकारते रहो और दूरसे दीखते ही प्रभुके बलसे तुरंत मारकर इन्हें भगा दो। तुलसीदासजीने 'संसार'से कहा था—

मैं तोहि अब जान्यो संसार।
बाँधि न सकहिं मोहि हरिके बल, प्रगट कपट आगार ॥
× ×
सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नंदकुमार।
× ×
निज हित सुनु सठ ! हठ न करहि, जो चहहि कुसल परिवार ॥

'अरे संसार ! मैंने तुझको अच्छी तरहसे जान लिया है। तू प्रत्यक्ष ही कपटका घर है। मुझे हरिका बल प्राप्त है, इससे अब तू मुझे नहीं बाँध सकेगा। तू अपने सहायकोंके साथ वहाँ जाकर रह, जिस हृदयमें नन्दनन्दन भगवान् न बसते हों। अरे शठ ! अपने हितकी बात सुन, कुटुम्ब-परिवारसहित अपनी कुशल चाहता है तो हठ मत कर। ( इतनेपर भी यहाँ आया तो सपरिवार मारा जायगा। )'

जिसने अपने हृदयके नेत्रोंसे भगवान्‌के हृदयकी ओर देख भर लिया है, वह भी आनन्दमय, प्रकाशमय हो जाता है—

जिसने देखा कभी हृदय-दृगसे प्रभुके अंतसकी ओर। उसके द्वन्द्व मिटे सारे वह हुआ अमल आनन्दविभोर ॥
तमके सभी कारणोंका, तमका हो गया समूल विनाश। मिला उसे आत्यन्तिक निर्मल शीतल सुखद अनन्त प्रकाश ॥

× × × ×

भगवान्‌का मङ्गलविधान ही सर्वत्र काम कर रहा है। मनुष्य अपने मनके अनुसार फल प्राप्त करना चाहता है, इसीसे वह निराश तथा दुखी होता है। भगवान् जब जैसी सुबुद्धि दें, तब वैसा काम तो अवश्य करना चाहिये, सुचारुरूपसे; पर आसक्तिरहित होकर; फल भगवान्‌के हाथ छोड़ देना चाहिये। न छोड़नेपर भी तो वह है भगवान्‌के हाथमें ही—अपने चाहनेसे इच्छानुसार फल नहीं मिलता। पर भगवान्‌के मङ्गलविधानपर विश्वास करके उन्हींपर छोड़ देनेसे प्रतिकूल फल होनेपर भी हमें क्षोभ नहीं होता, प्रसन्नता बनी रहती है। सदा प्रसन्न रहनेका यही तरीका है कि हम फल भगवान्‌पर छोड़ दें तथा प्रत्येक फलकी मङ्गलमयतामें अटल विश्वास रक्खें।

प्रेमकी चीज तो इससे भी बहुत ऊँची है। वहाँ तो मङ्गल-अमङ्गल या लाभ-हानिकी कल्पना ही नहीं है। प्रियतम भगवान्‌का मनोरथ ही अपना मनोरथ है। सदा, सर्वत्र, सब दिशाओंमें आनन्द-ही-आनन्द,

रस-ही-रस है। कहीं दुःख, क्लेश, विषाद, भय, चिन्ताको स्थान ही नहीं है। बार-बार इन पंक्तियोंको दोहराते रहो तथा इनके अनुसार बननेके लिये प्रयत्न करते रहो—

जीना-मरना आना-जाना रखता कुछ भी अर्थ नहीं। एक तुम्हारे मनकी हो बस स्वार्थ यही परमार्थ यही ॥

नष्ट हुए दोके अभावमें भय, चिन्ता, विषाद, मद, मान।

प्रेमीका यही स्वभाव होता है।

× × × ×

भगवान्की परम आत्मीयताका तथा उनकी सदा संनिधिका प्रत्यक्षवत् अनुभव करते रहना चाहिये। शरीरके लिये प्रारब्धानुसार जो होना होगा, होता रहेगा। उसकी जरा भी परवा न करके सदा-सर्वदा परम प्रसन्नतामें, अपने भगवान्के साथ नित्य सम्बन्धित रहनेमें, परम आनन्दमें मग्न रहना चाहिये। हमलोग शरीर और नामकी क्षुद्र सीमामें रहकर केवल उसीमें अनुकूलता-प्रतिकूलताका मिथ्या अनुभव करते हुए द्वन्द्वात्मक अनित्य मिथ्या सुख-दुःखोंसे ग्रस्त होते रहते हैं। एकमात्र भगवान्से सम्बन्ध मान लेनेपर, जो वास्तवमें है, हम इस द्वन्द्वात्मक जगत्से ऊपर उठ जाते हैं। फिर इसमें किसी अनुकूलता-प्रतिकूलताका अनुभव नहीं होता; वरं समस्त दृश्यमें सदा एकमात्र अपने भगवान्का ही अनुभव होता है। तुम इसका अनुभव किया करो। तुमपर भगवान्की अनन्त कृपा है। भगवान् सदा तुम्हारे पास—तुम्हारे साथ रहते हैं, इसमें जरा भी संदेह मत करो। सदा उनके साथ, उनके परमानन्द-सागरमें डूबे रहो।

× × ×

हमारा जिसमें यथार्थ परम हित है, भगवान् हमें उसी परिस्थितिमें रख रहे हैं—यह सदा विश्वास रखना चाहिये। तुम शरीरकी ओर न देखकर अपने सच्चे स्वरूपको देखो कि तुम एकमात्र भगवान्की वस्तु हो। शरीरका संयोग भगवान्का ही कराया हुआ और उनके इच्छानुसार बरतनेके लिये है। इसका सुख-दुःख भी उनका ही है और सच्ची बात भी यही है कि किसी भी आत्मनिवेदित जीवनका सारा सुख-दुःख भी उन्हींका है। तुम तो बस खेलकी वस्तु हो। हृदय उनका, हृदयकी सारी सुख-दुःखकी अनुभूति उनकी, भोक्ता वे, कर्ता वे। उनको सुख चाहिये तो सुखका निर्माण करें। सबके निर्माण-कर्ता वे ही हैं। जैसा चाहें, बनावें और भोगें। अपने तो हँसना-ही-हँसना है। उनके मनकी क्या अनुभूति है, इसको वे ही जानते हैं। पर यह याद रखना चाहिये कि वे सर्वरूप होते हुए भी अपने प्रेमीके प्रेमरसास्वादनके लिये लालसारूप बने रहते हैं। अतएव प्रेमीका जरा-सा भी दुःख, प्रेमी-हृदयकी जरा-सी भी वेदना उन्हें इतना रुला देती है, उनके हृदयमें इतना भयानक दुःख तथा भयानक वेदनाका निर्माण कर देती है, जिसकी कहीं कोई उपमा नहीं है। इसीलिये यह कहा जाता है कि श्रीकृष्णके वियोगमें राधा जितनी पीड़ित हैं, उनसे अनन्तगुना अधिक श्रीकृष्ण श्रीराधा-विरह-तापसे संतप्त हैं। यद्यपि विरह-पीड़ा, संताप भी सब स्वयं वे ही हैं, पर लीला तो है ही। तत्त्वतः तो श्रीराधा भी वे स्वयं ही हैं।

× × ×

असली स्वस्थता तो है—हमारी नित्य-निरन्तर 'स्व' में—अपने भगवान्में स्थिति बनी रहे। क्षणभरके लिये भी भगवान्को छोड़कर जगत्में स्थिति न रहे। केवल भगवान् हमारे और हम केवल भगवान्के ही रहें। उनके सिवा हमारी ममताका सम्बन्ध—असली 'मेरेपन' का सम्बन्ध किसी भी अन्य प्राणि-पदार्थसे है ही नहीं। सबसे व्यावहारिक सम्बन्धमात्र है; नाटकके खेलकी ज्यों है। व्यावहारिक सम्बन्धको लेकर जहाँ जैसा करना आवश्यक है, करना चाहिये, पर वह केवल व्यवहार है। वस्तुतः उसके बनने-बिगड़नेमें,

सृजन-संहारमें कहीं भी न लाभ है, न हानि; न सुख-दुःख है; न वास्तवमें अपना कुछ भी बनता-बिगड़ता ही है। खेलमात्र है। खेलमें मरण हो या जन्म—दोनोंमें ही समता है। बस, यही भाव बना रहे। केवल भाव ही नहीं, यही वास्तविक सत्य है। इस सत्यका सदा अनुभव करते रहो और हर-हालतमें नित्य-नित्य परमानन्दमें रहो। यह आनन्द ही तुम्हारी सम्पत्ति है, तुम्हारा स्वरूप है—स्वभाव है, इसका बार-बार अनुभव करो। फिर तुम्हें पता लगेगा—तुम्हारे दिव्य अनन्त परम सुखके सामने सुरराज इन्द्रका स्वर्ग-सुख भी तुच्छ है, नगण्य है।

× × ×

यह सर्वथा सत्य है कि भगवान्‌का भजन, भगवान्‌का स्मरण, भगवान्‌में मन-बुद्धिका समर्पण—यह सब भगवत्कृपासाध्य ही है; अपने पुरुषार्थसे यह सब कुछ नहीं होता। परंतु बात इतनी ही समझनेकी है कि 'क्या हमपर भगवत्कृपा नहीं है ?' 'भगवान्‌की कृपा नहीं है' ऐसा सम्भव ही नहीं है। उनकी अपार, अनन्त, असीम कृपा निरन्तर है; हम उसी कृपा-समुद्रमें डूबे रहते हैं। बस, कसर इतनी ही है कि उस नित्य अमित कृपापर हमारे विश्वासमें कुछ त्रुटि है। विश्वास जितना ही दृढ़ होगा और यथार्थ होगा उतनी ही कृपाकी अनुभूति होगी और उतना ही उनका स्मरण अधिक होगा एवं जगत्‌का चिन्तन घटेगा। जगत्‌की अनुकूलता-प्रतिकूलता भी तभीतक है, जबतक हम जगत्‌के दास बने हुए हैं, अपनेको हमने विषयोंकी गुलामीमें समर्पण कर रक्खा है। जिस क्षण हम भगवान्‌के हो जायँगे, उसी क्षण सारी अनुकूलता-प्रतिकूलता मिट जायगी। भगवान्‌का मधुर स्मरणजनित परमानन्द ही हमारा जीवन बन जायगा। न जागतिक दुःख रहेगा, न सुख। ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा था—

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्। तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः।

—'श्रीकृष्ण! जबतक मनुष्य तुम्हारा नहीं हो जाता, तभीतक राग-द्वेषादि चोर लगे रहते हैं, घर कैदखानेके समान सदा कैदमें बाँधे रखता है और मोहकी बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं।'

अतः हमें उनकी कृपाका अनुभव करके उनके ही बन जाना चाहिये। यह अनुभव कृपापर विश्वास करनेसे ही हो जायगा।

परिस्थिति कैसी भी हो, उसको भगवान्‌की कृपाके साथ जोड़कर उसका सदुपयोग कर लेना चाहिये। जगत्‌के प्राणि-पदार्थोंसे कोई आशा रखनी ही नहीं चाहिये।

× × ×

भगवान्‌को आत्मसमर्पण ( सम्पूर्ण आत्मनिवेदन ) करनेके पश्चात् अपने कुछ भी सोचने-जैसी बात नहीं रहनी चाहिये। भला-बुरा सोचना भी उनको है और करना भी उनको है। अपनेको तो यह भी पता नहीं होना चाहिये कि भला क्या है और बुरा क्या है। सचमुच अभी भी यह पता हमें नहीं है। हम जिसे भली वस्तु मानते हैं, वह बुरी निकल आती है और जिसको बुरी मानते हैं, वह भली साबित हो जाती है। वस्तुतः यह भला-बुरा हमसे कोई सम्पर्क ही नहीं रखता। हमारी आत्मा, हमारे प्राण, हमारा जीवनधन, हमारा जीवनसर्वस्व, हमारा अपना, हमारा पूर्ण ममतास्पद तो वह एक ही है, एक ही रहेगा। बस, यह विश्वास तथा यही सम्बन्ध अटल रहना चाहिये।

तुम ही मेरे प्राण-प्राण हो, तुम हो मेरे जीवनधन।
तुम ही अहंकार-ममता हो, तुम ही हो मेरे मति-मन॥
तुम ही मेरे परम-साध्य हो, तुम ही एकमात्र साधन।
तुम ही मेरे हो अनन्यगति, तुम ही मेरे आनँदघन॥
तुम ही हो सम्पत्ति अतुल, तुम ही हो मेरी कीर्ति-धवल।
तुम ही वर्तमान हो मेरे, तुम ही हो भविष्य उज्ज्वल॥

तुम ही हो सर्वस्व—तुम्हीं हो मेरे नित्य पराक्रम-बल ।
तुम ही नित्य रहोगे मेरे, तुम ही मेरे हो केवल ॥

—जिसका भगवान्‌के प्रति यह आत्मनिवेदन तथा अनन्य-सम्बन्धका भाव है, भगवान् सदा उसके हाथों बिके ही रहते हैं, उस अकिञ्चन भक्तके चरण-रज-कणसे अपनेको पवित्र करनेके लिये सदा-सर्वदा उसके पीछे-पीछे चला करते हैं। वे स्वयं यह कहते हैं—

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः । ( भागवत ११ । १४ । १६ )

वे पाप-पुण्य नहीं देखते, वे केवल इतना ही देखते हैं कि 'यह केवल और केवल मुझे ही अपना जीवन-धन, जीवन-सर्वस्व मानता है या नहीं, यह एकमात्र मुझे ही अपनेको पूर्णतया समर्पित कर चुका है या नहीं।'

× × ×

# बोध-कथाएँ

( लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन )

( १ )

मृत्युशय्यापर पड़े हुए युवकसे उसकी युवती पत्नीने पूछा—'मुझे किसपर छोड़े जा रहे हो ?'

युवकने शान्तिसे उत्तर दिया—'जिसपर मैं अपनेको छोड़ रहा हूँ। जो मृत्युपथपर मेरा मार्ग प्रदर्शित करेगा, क्या तुम समझती हो कि वह तुम जीवितकी ओरसे उदासीन हो जायगा ?'

( २ )

*जिज्ञासु*—भक्त ! तुम जो रात-दिन पूजा-पाठ करते थे, उसका फल तो तुम्हें मिल गया। तुम्हारे पास अब धन है, सत्ता है और पुत्र भी तुम्हें प्राप्त हो गया है। अब और क्या चाहते हो जो भगवान्‌के पीछे पड़े हुए हो ?

*भक्त*—मैं चाहता हूँ कि मेरी बुद्धि सदैव धनके सदुपयोगमें लगी रहे। धनका अभिमान एवं दुरुपयोग न हो। धनहीन होना अभिशाप है, परंतु उससे भी बड़ा अभिशाप धनका अभिमान और दुरुपयोग है। पुत्रहीन होना दुर्भाग्य है, परंतु उससे भी बड़ा दुर्भाग्य कुपुत्रको जन्म देना है। सत्ता बड़े पुण्य-कर्मसे प्राप्त होती है। मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ कि मैं इस सत्ताके बलपर राष्ट्रका सेवक तथा रक्षक होनेके स्थानपर सेव्य तथा भक्षक न बन जाऊँ। तुम स्वीकार करोगे कि सत्ताधारी भक्षकोंकी अपेक्षा सत्ताहीन ही रहना कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

( ३ )

चीत्कार करती हुई युवतीके आगे उसके पुत्रको खड़ा करते हुए लोगोंने कहा, 'अब जो होना था सो हो चुका। इस लड़केपर आस रक्खो।'

कुछ वर्षों पश्चात् लड़का भी मर गया। तब चीत्कार करती हुई प्रौढ़ाके आगे उसके पौत्रको रखते हुए लोगोंने कहा, 'अब जो होना था सो हो चुका। अब इस बालकपर आस रक्खो।'

कुछ वर्षों पश्चात् पोता भी मर गया। तब चीत्कार करती हुई वृद्धासे लोगोंने कहा, 'अब तो भगवान्‌पर ही आस रक्खो। वही सबका बेड़ा पार लगाते हैं।'

वृद्धा बोली, 'यह सब तुमने पहले ही क्यों नहीं बतला दिया था।'

# पढ़ो, समझो और करो

( १ )

## जैसा कर्म, वैसा फल

रामप्रताप और हजारीमल दोनोंके हिस्सेदारीमें दूकान चलती थी। दोनों राजस्थानके एक ही स्थानके रहनेवाले थे और बराबर थोड़ी-थोड़ी पूँजी लगाकर उन्होंने पूर्व बंगालके एक छोटे शहरमें, जो आजकल पाकिस्तानमें है, रामप्रताप हजारीमलके नामसे एक दूकान की थी। इनमें रामप्रताप बहुत ईमानदार, सच्चा, सबका भला चाहनेवाला तथा सदाचारी पुरुष था और हजारीमल ठीक इसके विपरीत बेईमान, मिथ्यावादी, दूसरोंका बुरा चाहने-करनेवाला, भ्रष्टाचारी-व्यभिचारी था। कारोबार तो ठीक चला, पर दोनोंकी नीतिमें बड़ा अन्तर था। हजारीमलने बेईमानीसे अलग पैसे इकट्ठे कर लिये। वह झूठे जमाखर्च करके दूकानके नफेकी अधिकांश आय हड़प जाता। आखिर रामप्रतापने हिस्सेदारीमें निर्वाह न होते देखकर अलग होनेका प्रस्ताव किया। हजारीमलके पास पैसा था, उसको कोई परवा नहीं थी। अलग-अलग हो गये। पुरानी दूकान रामप्रतापके हिस्सेमें रही। उसकी नगद पूँजी प्रायः खर्चमें समाप्त हो गयी थी। नफेकी रकम तो उस बहीखातेमें हजारीमलकी बेईमानीके कारण बहुत कम ही जमा होती थी। बचा मकान, जो तीस हजारमें रामप्रतापके जिम्मे लगाया गया। रामप्रतापने किसी तरह रुपये हजारीमलको दे दिये। पहलेका लेन-देन भी रामप्रतापके ही जिम्मे लगा। हजारीमलने अलग दूकान कर ली।

पर हजारीमल चाहता था, यह मकान भी रामप्रतापके न रहे। दूकान भी न चले। अतएव उसने वहीं आस-पासके एक बेईमान जमींदारसे साजिश करके उसे चालीस हजार रुपये कर्ज लेनेका एक दस्तावेज रामप्रताप हजारीमलके नामसे उस समयकी तारीखोंका लिख दिया, जिस समय उनकी हिस्सेदारीकी दूकान थी। उसपर स्टाम्प लगाकर रामप्रताप-हजारीमलके नामसे हस्ताक्षर कर दिये। उस समय हजारीमलको दस्तखत करनेका अधिकार था ही। जमींदारसे नालिश करवा दी। उससे तै कर लिया कि 'डिक्री हो जानेपर मकान कुर्क करके नीलाम करा दिया जायगा। जो रुपये मिलेंगे, उसमेंसे पाँच प्रतिशत जमींदारको दे दिये जायँगे' वह राजी हो गया।

नालिश हो ही गयी। हजारीमलने बयान दे दिया। रुपये लेना स्वीकार किया। डिक्री हो गयी। पहलेका लेन-देन रामप्रतापके जिम्मे था ही। रामप्रतापके पास रुपये तो देनेको थे ही नहीं, अतएव उसके मकानपर कुर्की भिजवा दी गयी। नीलामकी तारीख निश्चित हो गयी। उस तारीखतक रुपये न भरनेपर मकान नीलाम हो जायगा। बेचारा रामप्रताप निर्दोष मारा गया। पर उसके भगवद्विश्वासी तथा उदार हृदयने कहा—'यह जो कुछ हुआ या हो रहा है, सब निश्चय ही मेरे अपने ही किये हुए पूर्व कर्मोंका फल है। बेचारा हजारीमल तो निमित्त बना है। पर बुरी नीयतके कारण इस पापका दण्ड उसे मिलेगा। भगवान् उसे क्षमा करें।'

संयोगकी बात या दण्ड-पुरस्कार-विधाता परमात्माके विधानका चमत्कार! मकानके नीलामकी तारीखके पाँच दिन पहले ही रात्रिको हजारीमलके घर भयानक डाका पड़ा। हजारीमलके सिरमें दावकी गहरी चोट लगी। उसका सब कुछ लूटकर डाकू ले गये। सबेरे जब यह खबर सुनी तो रामप्रतापको बड़ा दुःख हुआ। वह हजारीमलके घर गया। उसे उसी अवस्थामें कुछ दूरपर स्थित अस्पतालमें ले गया। अस्पताल जानेपर कुछ चिकित्सा होनेपर उसे होश आया। देखा तो पता लगा कि इलाजकी तथा इलाजके सारे खर्चकी व्यवस्था रामप्रताप कर रहे हैं। हजारीमलको डाक्टरोंने अभी खतरेसे खाली नहीं बताया। इसलिये मैजिस्ट्रेटने आकर उसके बयान लिये। उसके हृदयमें परिवर्तन हो चुका था। उसने डकैतीका सारा विवरण बतानेके साथ, जमींदारके साथ साजिश करके रामप्रतापपर झूठी डिक्री कराने तथा उसके मकानपर कुर्की भिजवानेकी बात स्वीकार करते हुए कहा कि यह सारा मेरे इस पापका ही फल है।

मामला कलक्टरके पास पहुँचा। कलक्टरने उक्त जमींदारको बुलाया। उसने भी सत्य स्वीकार करके कहा कि 'मैंने रुपयेके लोभसे ऐसा किया।' डिक्री कोर्टसे खारिज हो गयी। पर हजारीमल बच नहीं सका। उसने मरते समय रामप्रतापसे क्षमा माँगी। हजारीमलकी इस दशाको देखकर सचमुच ही रामप्रतापको बड़ा दुःख हो रहा था। वह रोने लगा। हजारीमलको आश्वासन दिया और हजारीमलके मरनेके बाद उसकी पत्नी तथा दो बच्चों (एक लड़का, एक लड़की) को अपने घर ले आया। उनका दूकानमें आधा हिस्सा कर दिया। रामप्रतापकी सच्चाई, ईमानदारी तथा सद्भावनाकी कीर्ति दूर-दूरतक फैल गयी थी। अतः उसकी

दूकान खूद चल निकली। व्यापारमें लाभ हुआ। लाभका आधा हिस्सा बराबर हजारीमलकी स्त्री-बच्चोंको मिलता रहा। उनके पास साठ हजारकी पूँजी हो गयी तथा लड़का काम सँभालने लायक हो गया, तब रामप्रतापने उसे अलग दूकान करवा दी। हजारीमलकी भली पत्नी रामप्रतापके उपकारोंको सदा ही बड़ी कृतज्ञतासे बखान किया करती थी। भगवान्‌ने रामप्रतापपर बड़ी कृपा की और उसने सब तरहसे समुन्नत होकर भगवान्‌की भक्ति-भावनामें जीवन लगाया। उसके भले लड़के घर-व्यापारका काम करने लगे। —जीवनराम ब्राह्मण

( २ )

## शिष्टताकी पराकाष्ठा

कुछ समय पूर्व व्यापारके कामसे इंगलैंड और यूरोपके अन्यान्य देशोंकी यात्रा करके लौटे हुए एक आदरणीय सम्बन्धी सज्जनसे सुनी हुई घटना उन्हींके शब्दोंमें नीचे दे रहा हूँ—

इंगलैंडमें मैं दस दिन ठहरा था। व्यापार-सम्बन्धी कामकाज निपटाकर वहाँसे सीधे बम्बई जानेका कार्यक्रम था। अन्तिम दिनोंमें एक संध्याके समय मैं परिवारके लिये कुछ चीजें खरीदने डिपार्टमेंटल स्टोरमें गया। वहाँ विविध प्रकारकी बहुत-सी चीजोंके साथ एक बहुत बढ़िया नाजुक तथा सुन्दर कैमेरा भी खरीदा। कैमेरा बहुत कीमती था, अतएव उसे टेबलपर न रखकर मैंने अपने हाथमें रक्खा और फिर अनजानमें ही उसे पहने हुए लंबे ओवरकोटकी जेबमें डाल दिया। सारी चीजें ज्यों-ज्यों पसंद आती गयीं, लेता गया और साथ-ही-साथ उनका बिल बनता गया। आखिरी पैकिंगके समय हमलोग चीजोंकी गिनती और सँभाल करते हुए बातोंमें लग गये। ड्यूटीवाली बहन हेड केशियरके साथ चुपके-चुपके कुछ बात कर रही थी। तदनन्तर हमारे सारे सामानके साथ एक कैमेरा भी पैक किया गया। बिल चुकाकर मैं डेरेपर पहुँचा।

रातको भोजनके बाद कुछ निकालनेके लिये मैंने खूँटीपर लटकते हुए ओवरकोटकी जेबमें हाथ डाला और जैसे बिजली-सा झटका लगा हो, तुरंत मैंने हाथ बाहर निकाल लिया। हमलोग स्टोरमें बातें कर रहे थे, उस समय पहले-वाला कैमेरा न मिलनेपर उन लोगोंने वैसा ही एक दूसरा कैमेरा दिया था, यह बात याद आयी। पर अब क्या हो? स्टोर बंद हो गया होगा। रातको नींद नहीं आयी। सबेरे टैक्सी करके मैं स्टोरमें गया। ड्यूटीवाली बहन मुझे देखते ही मुस्करायी। कुछ ही देर बाद हेड केशियर बहन भी अपनी जगहसे उठकर वहाँ आ गयी। मैंने ओवरकोटकी जेबसे कैमेरा निकालकर टेबलपर रख दिया और बहुत अफसोस जाहिर करते हुए कहा—"भूलसे अनजानमें ही मैंने इस नाजुक कैमेरेको हाथसे जेबमें डाल लिया था और आपलोगोंने, खो गया समझकर, दूसरा दे दिया। रातको ही मुझे जेबमें यह मिला। मुझे दुःख है कि मैंने आपको कष्ट और मानसिक अशान्ति दी। रातको हिसाब मिलाते समय इस कैमेरेकी कीमतके सम्बन्धमें क्या करना चाहिये—इस विषयको लेकर आपलोगोंके मनोंमें उथल-पुथल जरूर हुई होगी। इतना होनेपर भी इस समय वापस मिल जानेसे आप दोनोंको खुशी हुई है, यह आपके मुखके भावोंसे मैं समझ रहा हूँ।' वे दोनों एक दूसरीकी ओर देखती मुस्कराती रहीं।

कुछ देर बाद हेड केशियर बहन बोली—"भाई साहेब! आप खरीदी पूरी करके बातोंमें लगे थे, उस समय उन बातोंमें ही आपने कैमेरा ओवरकोटकी जेबमें डाल लिया था। इसको ड्यूटीवाली बहनने देखा था। जब पैकिंगके समय मैं कैमेरा ढूँढ़ रही थी, तब आपने देखा होगा, यह बहन मुझे एक कोनेमें ले गयी थी। इसने मेरे कानमें कहा भी था कि 'कैमेरा आपकी जेबमें है और उसे निकलवा लेना चाहिये।' पर आप सोचिये, दूसरे कई ग्राहकों तथा हमारे स्टाफके लोगोंके सामने (चाहे जितनी मृदु वाणीसे कहकर) मैंने यदि आपकी जेबसे कैमेरा निकलवाया होता तो आपको कितना संकोच होता। भले ही आपकी नीयत जरा भी खराब न हो, पर सबके सामने आपकी फजीहत होना आपके लिये बहुत ही दुःखप्रद होता और आप बड़े ही शर्मिंदा हो जाते। यह सोचकर मैंने इस बहनसे कहा कि 'भले ही वह कैमेरा ग्राहककी जेबमें हो, वैसा ही दूसरा कैमेरा देकर पैक कर दो और उसकी रकम मेरे नाम लिख दो। मुझे विश्वास है कि यह आदमी दोनों कैमेरे नहीं रख सकता। पता लगते ही वापस भेजनेकी व्यवस्था करेगा।' यों कोनेमें जल्दीसे बात पूरी करके दूसरा कैमेरा पैक कर दिया गया। देखिये, अब रजिस्टरमें मेरे नाम लिखी कैमेराकी रकम काटी जा रही है।'

उसकी बात सुनकर मैं तो दंग ही हो गया। अपनेको पता होनेपर भी ग्राहकको बुरा न लगे और उसकी प्रतिष्ठामें धक्का

न पहुँचे—केवल इसीलिये पाँच हजार ( कैमेराकी कीमत ) की बड़ी रकमकी जोखिम अपने सिर लेनेवाली इस बहनको मैं वन्दन करता रहा। 'अखण्ड आनन्द'—

—सुबोधचन्द्र कानजी ठक्कर

( ३ )

## त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर

बचपनसे ही मेरे हृदयमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और माता सीताके प्रति प्रेम था, परंतु अबोध एवं अल्पज्ञ होनेके कारण उपासना-अर्चना करनेमें समर्थ नहीं था। कालान्तरमें मेरी रुचि सांसारिक मोह-मायाके प्रति अधिक हो गयी। लेकिन प्रभुने मुझे तुरंत सचेत कर दिया। मैं हाईस्कूलकी परीक्षामें दो बार अनुत्तीर्ण हुआ और इस असफलतासे मेरे जीवनमें एक नया परिवर्तन हुआ। मैं परीक्षामें असफल होनेपर इतना उदासीन एवं निराश हो गया था कि मुझे जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगा था! अधिक दुखी होनेपर मेरे मनमें अकस्मात् यह भाव उत्पन्न हुआ कि 'मुझे भगवान्की शरण लेनी चाहिये, तभी मेरी कामना पूर्ण होगी।' इस विचारके अनुरूप मैंने प्रभुकी उपासना करना आरम्भ किया और इतना दृढ़ संकल्प किया कि नित्य-क्रियाके उपरान्त उपासना करनेके बाद ही जल ग्रहण करता था। इस पुनीत कार्यके शुभारम्भके बाद मेरे मनमें फिर हाईस्कूलकी परीक्षा देनेकी तरङ्ग उठी। मैंने तीसरे वर्ष फिर परीक्षा दी। इस बार प्रभुकी असीम अनुकम्पासे मैं द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हो गया। इस सफलतासे मेरे अन्तस्में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा माता सीताके प्रति पवित्र पितृ-मातृभावकी अनन्य निष्ठा सम्भूत हुई। हाईस्कूलके बाद आगेकी शिक्षाके हेतु विचार करने लगा। इसी बीच मेरी माताका आकस्मिक निधन हो जानेसे मेरी शिक्षामें महान् बाधा उपस्थित हुई। इस विषम परिस्थितिमें भी प्रभुने अपूर्व सहायता की और मेरी प्रगतिका द्वार खोल दिया। मैंने प्रभुकी कृपासे इंटर प्रथम वर्षकी परीक्षा दी ही थी कि इसी समय मेरे पिताजी एक भयानक रोगसे पीड़ित हो गये। उनकी दशा बहुत ही गम्भीर होती गयी। मैं उनके जीवनसे निराश हो गया था। अब केवल भगवान्का ही सहारा था, उन्हींकी कृपाका भरोसा था। मैं रात-दिन प्रभुका आह्वान आर्तस्वरोंमें करने लगा। प्रभुने मेरी प्रार्थना सुन ली और तुरंत मेरे पिताजीको आराम होने लगा एवं धीरे-धीरे पिताजी स्वस्थ हो गये, जब कि उस भयानक रोगसे डाक्टर भी हताश हो गये थे। पिताजीके स्वस्थ हो जानेपर मैंने किसी तरह एफ्० ए० पास किया। अध्ययनकालमें इसी बीच प्रभुकी कृपासे विद्यालयमें सम्पन्न होनेवाले चुनावमें भी मैं विजयी हुआ। इंटर करनेके बाद बिना किसी कठिनाईके प्रभुने मुझे माध्यमिक विद्यालयमें शिक्षक नियुक्त करवा दिया। उनकी कृपाका मुझे अब पूरा भरोसा था। मेरा जीवन 'सीय राम मय' बनने लगा। दिनोंदिन मेरी आस्था श्रीचरणोंके प्रति दृढ़ होती गयी। शिक्षणकालमें ही मेरे मनमें स्नातक ( बी० ए० ) की परीक्षा पास करनेका भाव जाग्रत् हुआ। मैंने भगवान् श्रीरामजीके सहारे बी० ए०की परीक्षा दी और उसमें भी उत्तीर्ण हुआ। इसी श्रृङ्खलामें मैंने स्नातकोत्तर (एम्० ए०) की भी परीक्षा उत्तीर्ण की। वाञ्छित शिक्षा प्राप्त हो जानेपर प्रभुके प्रति मेरा अनुराग बढ़ता ही गया। सब सुख और शान्तिके प्राप्त होनेपर भी निःसंतान होनेसे कुछ चिन्ता बनी रहती थी। घरमें संतानका मुँह देखनेके लिये सभी लालायित थे। इस इच्छाको भी मैंने परम पिता और माताके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दिया। उन्होंने मुझे विशेष दुखी समझकर एक पुत्र और एक पुत्री प्रदान की, जिससे मेरे घरमें प्रकाश हो गया। प्रभुकी इस अपार देनसे मेरे परिवारके सभी सदस्य तथा हम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और माता सीताके बहुत ही अनुगृहीत तथा ऋणी हो गये हैं। अयोध्या मेरा एकमात्र तीर्थस्थान हो गया है और अवधराज मेरे परम आराध्य हो गये हैं। आज जो मैं थोड़ी-बहुत साहित्य-सेवा कर रहा हूँ, यह सब उन परम पिता और माताकी ही कृपा है। मैं आज प्रतिपल प्रति पगपर प्रभुकी कृपाका अनुभव कर रहा हूँ। कठिन-से-कठिन कार्य प्रभुकी ही कृपासे सम्पन्न होते जा रहे हैं।

अब मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि दृढ़ आस्थाके साथ भगवान्का भजन एवं गुणगान किया जाय तो सभी संकट दूर हो सकते हैं।

अटूट श्रद्धाके साथ प्रभुकी उपासना करनेपर उसका फल बहुत ही चामत्कारिक तथा श्रेष्ठ होता है। निरन्तर ११ वर्षोंसे मेरा यह अनुभव होता आ रहा है कि बिना प्रभुकी कृपाके मानवका कल्याण सम्भव नहीं और न मनुष्य-जीवनमें वह सुख ही प्राप्त कर सकता है। अतएव समस्त सिद्धियों तथा सुख-शान्तिके लिये अपार श्रद्धा और विश्वास-

के साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा जगज्जननी माता सीताके युगल पदाम्बुजोंकी सतत उपासना करनी चाहिये। यही जीवनका परम लक्ष्य है, जैसा कि पूज्य गोस्वामीजीने अपने 'रामचरितमानस'में लिखा है—

'साधन सिद्धि राम पग नेहू'

—देवीप्रसाद पाण्डेय 'अडिग' एम्० ए० 'गीतकार'

( ४ )

## विद्यासागर-दयासागर

चारों ओर अंधकार छाया था। रातके लगभग दस बजे थे। बंगालके विद्यागुरु और विख्यात विद्वान् श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर एक परिचित गलीसे जा रहे थे। इसी बीचमें उनके कानोंमें किसीके रोनेकी आवाज आयी। विद्यासागरको आवाज करुणापूर्ण प्रतीत हुई। उनका मृदुल हृदय धड़कने लगा और उनके मनमें दुःखकी तरङ्गें उठने लगीं। वे कुछ क्षण तो वहाँ खड़े रहे, फिर जिस घरसे आवाज आ रही थी, उन्होंने वहाँ जाकर घरकी साँकलको खड़खड़ाया। दरवाजा खुला।

ईश्वरचन्द्र भीतर गये। मकान जर्जरित था। बातोंसे पता लगा कि वह घर एक गरीब ब्राह्मणका था, वही रो रहा था।

विद्यासागरने पूछा—'दादा, रो क्यों रहे हो?'

दादाने विद्यासागरकी ओर देखा, फिर सिर पीट लिया। कुछ देर बाद सारे शरीरको हचमचाकर उसने कहा—'भाई! दूसरेके दुःखको जानकर आजके आदमी प्रसन्न होते हैं।

आप भी मेरा दुःख जानना चाहते हैं...'

'दादा! आपकी छातीपर हाथ रखकर कह रहा हूँ कि मैं सचमुच आपका दुःख जानना और समझना चाहता हूँ। भगवान्से तो बड़ा कौन है? परंतु मनुष्यसे यदि एक मनुष्यका दुःख हल्का हो सकता होगा, तो मैं हृदयसे प्रयत्न करूँगा।'

'सचमुच!' बूढ़ा ब्राह्मण आये हुए इस आदमीकी संस्कार-ज्योतिसे नमित हो गया। उसके सूखे होठ तथा गहरी अंदर धँसी हुई आँखोंमें हास्य छा गया। मिट्टीके दीपककी ज्योति भी जरा सजीवन-सी दिखायी दी।

'अच्छी बात है, मैं अपना दुःख आपको सुनाकर हल्का तो हो जाऊँगा।'

'मुझसे हो सकेगा तो मैं आपके दुःखको दूर करनेका प्रयत्न करूँगा।'

'यह तो ठीक है''हो या न हो''परंतु मेरी बात सुनकर बहुत-से लोगोंकी तरह आप खुश होंगे तो—'

'ऐसा माननेकी क्या जरूरत है, दादा?' विद्यासागरने कहा।

दादामें हिम्मत आयी। रोते-रोते उसने कहा—'एकमात्र लड़कीके विवाहके लिये सराफसे तीन सौ रुपये लिये थे। वापस न लौटा सका, इसलिये सराफने नालिश कर दी और अब उस नालिशके परिणामस्वरूप यह टूटा-फूटा घर भी जा रहा है। क्या करूँ? रो-रोकर दिन निकाल रहा हूँ। अगली सातवीं अगस्तको मुझे रकम भरनी है। नहीं तो मेरा सारा आधार ही चला जायगा और कदाचित् उस दिनके बादमें भी इस दुनियामें न रहूँ। ईश्वरके धाममें पहुँच जाऊँ।'

विद्यासागरने लंबा श्वास लिया। गरीब ब्राह्मणके हृदयमें अभी भी जीवनकी आशा थी। विद्यासागरने सोचा— फिर उन्होंने मुकद्दमेकी रकम, तारीख, नालिश करनेवालेका नाम, दादाका नाम तथा कोर्टकी सारी जानकारी धीरे-धीरे दादासे प्राप्त कर ली और दादाको आश्वासन देकर विदा हो गये।

वृद्ध गरीब ब्राह्मणको तो कुछ भी आशा नहीं थी, पर जब सातवीं अगस्तको वह कोर्टमें गया, तब पता लगा कि मुकद्दमा वापस उठा लिया गया है। ब्राह्मणको आश्चर्य हुआ। ब्राह्मणके नामपर कोई तीन सौ रुपये भर गया था। ब्राह्मणके नेत्रोंसे हर्षके आँसू ढलक पड़े और मन-ही-मन उसने रकम भरनेवालेको आशीर्वाद दिया। यह रकम कहाँसे आयी, ब्राह्मण इसका पता लगाने लगा। पीछे मालूम हुआ कि रकम भरनेवाले थे—बंगालके विद्वान् विद्यागुरु ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और तभी ब्राह्मण यह जान सका कि उस दिन रातको हृदयकी सहानुभूति देने तथा टूटे-फूटे घरमें आनेवाले वे ही महापुरुष थे। वृद्ध ब्राह्मणके हृदयमें हर्षकी तरङ्गें उछलने लगीं। 'अखण्ड आनन्द'

—नटवर मेवाड़ा

( ५ )

## मानवता लज्जित हो जाती

सन् १९६१ में मेरा स्थानान्तरण हाईस्कूल रेनवालसे भैसलाना हा. से. स्कूलमें हुआ । वहाँसे रिलीव होकर आया तब कुछ टेस्टोंकी कापियाँ जाँचकर वापिस देनी थी । स्कूल छुट्टियोंके बाद खुला था । उसी दिन मुझे वापिस देने जाना था । मैं ८ बजे रातकी गाड़ीसे सवार हुआ, जो फुलेरासे रिवाड़ी जाती है । गाड़ीमें जगह नहीं मिली । कारण यह था कि पुष्करका मेला चल रहा था । मैं गाड़ीका पायदान पकड़कर लटक गया । मेरे पास थैलेमें बोझा था । मेरे साथ दो-तीन आदमी और लटक रहे थे । गाड़ीमें जगह नहीं थी । भीड़ अत्यन्त थी । खिड़कीके शीशोंमेंसे अंदरके यात्री दिखायी पड़ रहे थे । मैं जोर-जोरसे कह रहा था, 'हमें अंदर आने दो । हमारे पास बोझा है, हाथ छूट जायँगे ।' लेकिन अंदरके यात्री हँस रहे थे । एक सफेद साफा बाँधे तथा कुर्ता पहिने सज्जन जो अगले स्टेशनके रहनेवाले वयोवृद्ध संन्यासी थे, पुष्कर जाकर आये थे । खिड़की खोलकर मेरे हाथ और कमरको पकड़कर अंदर खींचकर यात्रियोंपर डाल दिया और यात्रियोंसे बोले 'इन्हें अंदर न आने देते, तो हाथ छूट जाते, तीर्थयात्रा करके आये हो ? क्या इस पापसे मानवता लज्जित नहीं होती ?' डिब्बेके यात्री सचमुच लज्जित थे । काश, देशमें यह मानवीय संवेदना होती ।

—राधेश्याम कौशिक प्राध्यापक, राजनीतिविज्ञान

( ६ )

## ईमानदारी

एक बार पेटलादकी एक मिलका इंजिन बिगड़ गया । मिल स्वीजरलैंडकी बनी हुई थी । अतः इंजिन सुधारनेके लिये कम्पनीकी ओरसे एक सज्जन आये और दूसरे दिन सवेरे साढ़े छः बजे ही कपड़े बदलकर हथौड़ा लेकर वे काममें लग गये । उनके काम करनेकी लगनको देखकर मिलमालिकको बड़ी खुशी हुई और उन्होंने सोचा कि 'इस आदमीको कुछ पैसे अलगसे दे दिये जायँ तो यह और भी ज्यादा काम करेगा जिससे मिल जल्दी चालू हो जायगी ।' यों सोचकर उससे एकान्तमें कहा कि 'आप यदि रातको भी काम करेंगे तो मैं आपको अतिरिक्त कामका वेतन और दूँगा ।' उन इंजिनीयरने उत्तरमें कहा—'हाँ, मैं काम तो जरूर करूँगा, पर वेतन नहीं ले सकता । आप इसके लिये हमारी कम्पनीको लिख दीजियेगा । यों मेरी ड्यूटी तो आठ घंटे काम करनेकी है, पर यहाँ तो चौबीस घंटेके लिये भेजा गया हूँ ।'

मिलमालिक यह उत्तर सुनकर चकित रह गये । कहाँ स्वीजरलैंड ? कहाँ कम्पनी ? इसपर भी इस आदमीके मनमें कितनी ईमानदारी भरी है । इस ईमानदारीको ही सच्चा धर्म समझना चाहिये । आज अपने यहाँ यह ईमानदारीकी पूँजी समाप्त होती जा रही है, इसीसे सरकारको घूस-रिश्वत रोकनेके लिये एक विभाग खोलना पड़ा है । फिर, यह विभाग रिश्वत न ले, इसकी देख-रेखके लिये अफसर रखने पड़े हैं, परंतु ये अफसर भी घूस-रिश्वत या बकसीस न लें—इसकी रेख-देख कौन रक्खेगा ?

'अखण्ड आनन्द' —लहरी

( ७ )

## गुरुजनोंकी आलोचना

एक बार महात्मा गाँधीके एक पुत्रने गाँधीजीकी आलोचना की । गाँधीजीने अपने इस पुत्रको पत्र लिखा कि 'उसने अपने पिताकी आलोचना करके पाप किया है । एक पुत्रको अपने पिताकी आलोचनाका कोई अधिकार नहीं है ।' जब लव-कुशने राजा श्रीरामचन्द्रजीके अश्वमेध यज्ञके अश्वको वनमें पकड़ लिया और लक्ष्मणजीके पुत्रश्री उसे छुड़ाने गये तथा श्रीरामचन्द्रजीकी महिमा वर्णन करने लगे । उस समय लव-कुशने कहा कि क्या श्रीरामचन्द्र वही हैं, जिन्होंने अपनी धर्मपत्नीको निकाल दिया, इत्यादि । इसपर श्रीलक्ष्मणजीके सुपुत्रने उत्तर दिया कि बड़ों ( गुरुजनों ) के व्यवहार एवं चरित्र आलोचना-योग्य नहीं होते ।

विगत सप्ताह मैं अपने एक सम्माननीय मित्रसे मिलने गया । वे अनुपस्थित थे । उनके पुत्र मिले । मैंने उनसे कहा कि 'आपके पिताजीका स्वभाव विचित्र है ।' ( वस्तुतः मेरा ऐसा कहना उचित न था । ) मित्रके पुत्रने मेरी टिप्पणीका उत्तर न देकर प्रसंगको एक प्रकारसे टाल दिया । मैं उस पुत्रकी शिष्टतासे बड़ा प्रभावित हुआ और इसके लिये अपने मित्रको बधाई देता हूँ । आजकी दूषित अवस्थामें ऐसे पुत्र भी बधाईके पात्र हैं ।

—सुरेन्द्रप्रसाद गर्ग एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

## 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंसे क्षमा-प्रार्थना तथा विशेष निवेदन

( १ ) इस वार 'कल्याण'—विशेषाङ्कके प्रकाशनमें बहुत अधिक देर हो गयी । इससे 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको जो कष्ट हुआ, वार-वार पत्र लिखने पड़े, इसका हमें बहुत खेद है । यह अप्रैलका अङ्क भी देरसे ही जा रहा है । तैयार तो पहले ही हो गया था, परंतु विशेषाङ्कके अजिल्द तथा सजिल्द अङ्क रजिस्ट्री तथा वी० पी०से सारे ग्राहकोंकी सेवामें गत ७ मईतक ही भेजे जा सके । सजिल्द अङ्क तैयार कम हो पाते थे तथा पाँच हजारसे अधिक एक दिनमें डाकसे जाते भी नहीं । पौने दो लाखके लगभग रजिस्ट्री तथा वी० पी० जानेमें काफी समय लग जाता है । इसीसे अप्रैलका अङ्क भी देरसे जाना शुरू हुआ; अव वी० पी० के रुपये ज्यों-ज्यों आते जायँगे, त्यों-ही-त्यों यह अङ्क सेवामें भेजा जाता रहेगा। इस विलम्बके लिये हम करवद्ध क्षमा-प्रार्थी हैं ।

( २ ) 'कल्याण'में काफी घाटा है, यह वात पहले वतायी जा चुकी है । लेकिन इस वार 'कल्याण' के १,६५,००० अङ्क छापे जा रहे हैं । लगभग डेढ़ लाख पुराने ग्राहक थे; उनमेंसे कुछ घटे हैं तो कुछ वढ़े हैं । लगभग दस हजार नये ग्राहक और वन जायँ तो सारे अङ्क निकल जाते हैं । आजकल प्रतिदिन ही नये ग्राहकोंकी काफी माँग आ रही है, इससे आशा है हजारों नये ग्राहक वन जायँगे; पर यदि हमारे लाखों पाठक तथा ग्राहक थोड़ी-सी मनसे चेष्टा करें तो १०-१२ हजार नये ग्राहक बहुत शीघ्र वन सकते हैं । अतः हमारा विशेष निवेदन है कि वे इस ओर ध्यान देकर विशेष चेष्टा करके दस-वारह हजार नये ग्राहक तुरंत वना दें और प्रत्येक ग्राहकसे ९.०० वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे भेजवानेकी कृपा करें ।

विनीत—व्यवस्थापक—'कल्याण'

## 'कल्याण'के समस्त पाठक-पाठिकाओंसे विशेष अनुरोध

'कल्याण'के समस्त ग्राहकों तथा पाठक-पाठिकाओंसे विनम्र विशेष अनुरोध है कि यथासाध्य नीचे लिखे अनुसार आचरण करके 'कल्याण'के सच्चे प्रचारमें सक्रिय सहायक वनें तथा अपना एवं देशका यथार्थ कल्याण-साधन करें—

( क ) मनमें कभी हिंसा, द्वेष, असत्य, चोरी-ठगी, अभिमान, असंयम तथा अनाचार-व्यभिचार आदिके एवं अनर्थ-व्यर्थके विचार न आने दें; सदा सद्विचार तथा सद्भावोंका मनन करें; भगवत्सेवाके भावसे प्राणिमात्रके हितकी वात ही सोचें और जहाँतक वने, नित्य-निरन्तर भगवान्के नाम-रूप-तत्त्वका स्मरण करते रहें ।

( ख ) वाणीसे कभी हिंसा, असत्य, चोरी-ठगी, दूसरेके हितका नाश करनेवाले, अभिमानपूर्ण, अपमानजनक, सदाचारविरोधी, कठोर, मिथ्या तथा अनर्थ व्यर्थ शब्दोंका उच्चारण न करें । सदा-सर्वदा सवको सुख देने तथा सवका हित सम्पादन करनेवाले सत्य, मधुर, हितकर, विनयपूर्ण शब्दोंका ही उच्चारण करें; व्यर्थ वात न करें । अनावश्यक न वोलें और जहाँतक हो—अधिक-से-अधिक भगवन्नाम-गुणका जप-कीर्तन करते रहें ।

( ग ) शरीरसे किसीका अहित, हिंसा, चोरी-ठगी, अवैध आचरण, अनर्थ तथा व्यर्थ कार्य न करें । आलस्य छोड़कर विनयभावसे यथायोग्य सेवा, श्रम तथा भगवत्पूजाके भावसे सव कर्म करें । यों मन-वचन-तनसे होनेवाले प्रत्येक पवित्र कर्मको भगवत्सेवा वना दें ।

विनीत—सम्पादक 'कल्याण'

## श्रीगीता एवं श्रीरामायणकी आगामी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस—ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको प्रायः सभी श्रेणीके लोग विशेष आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इसलिये समितिने इन ग्रन्थोंके द्वारा धार्मिक शिक्षाका प्रसार करनेके लिये परीक्षाओंकी व्यवस्था की है। उत्तीर्ण छात्रोंको योग्यतानुसार पुरस्कार भी दिया जाता है। परीक्षाओंके लिये स्थान-स्थानपर लगभग ५०० केन्द्र भी स्थापित हैं तथा और भी नियमानुसार स्थापित किये जा सकते हैं।

आगामी गीता-परीक्षाएँ दिनाङ्क २२ व २३ नवम्बर, १९७० को एवं रामायणकी परीक्षाएँ दिनाङ्क २४ व २५ जनवरी, १९७१ को होनेवाली हैं। केन्द्र-व्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि सभी परीक्षाओंके लिये आवेदन-पत्र एवं नवीन केन्द्रोंके लिये प्रार्थना-पत्र दिनाङ्क ३० अगस्त, १९७० तक भेज देनेकी कृपा करें।

विशेष जानकारीके लिये पत्र लिखकर नियमावली मँगा सकते हैं।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन,
पो० स्वर्गाश्रम, मार्ग-ऋषिकेश ( पौड़ी-गढ़वाल ) उ० प्र०

*दो नयी पुस्तकें !* *प्रकाशित हो गयीं !!*

## श्रीराधा-माधव-चिन्तन—परिशिष्ट

( ग्रन्थकार—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

आकार डिमाई सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २४०, श्रीराधामाधव-युगलका सुन्दर तिरंगा चित्र, श्रीराधा-माधवके चित्रसे विभूषित आकर्षक रंगीन मुखपृष्ठ, मूल्य २.००, डाकखर्च १.१० ।

यह पूर्वप्रकाशित 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'का ही एक अंश है। यदि उस पुस्तकके नवीन संस्करण होनेका अवसर प्राप्त हुआ होता तो यह भाग भी उसीमें सम्मिलित कर दिया जाता; परंतु उसके प्रकाशनमें विलम्बकी सम्भावना देखकर इस अंशको 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन—परिशिष्ट'के नामसे प्रकाशित किया गया है। इसमें वि० सं० २०२१ से वि० सं० २०२६ तकके श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर दिये गये पाँच प्रवचन और अन्तमें 'श्रीराधामाधव-जय-जयकार' शीर्षक एक पृष्ठका छोटा-सा मधुरिमामय पद्य तथा सं० २०१९ वि०से सं० २०२६ वि० तकके श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी-महोत्सवपर दिये गये आठ प्रवचन—यों कुल चौदह प्रवचन संकलित हैं। इसकी भाषा बड़ी ओजस्विनी तथा चित्ताकर्षक है। पढ़नेसे हृदयमें श्रीराधा-माधव-विषयक प्रेम-आनन्दकी गुदगुदी उत्पन्न कर देती है। आशा है, प्रेमी जनता इस संग्रहसे भी पूर्ववत् लाभ उठायेगी।

## जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग

( लेखक—स्वामी श्रीरामसुखदासजी )

आकार २०×३० सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४४, मूल्य २० पैसे, डाकखर्च १० पैसे।

स्वामीजी गीताके मर्मज्ञ व्याख्याता हैं। गीता-ज्ञानार्णवमें डुबकी लगाकर इसके अमूल्य रत्नोंको जनतामें वितरण करते रहना इनका स्वभाव बन गया है। इन्हींके पाँच लेखोंका इस पुस्तिकामें संग्रह किया गया है। इसके 'सभी कर्मोंका नाम यज्ञ है' शीर्षक प्रथम लेखमें गीतोक्त निष्काम कर्मका मर्म, यज्ञका रहस्य तथा भगवत्पूजाका विधान बड़ी ही सहज, सरल भाषामें समझाया गया है। द्वितीय लेखमें मालिक और कर्मचारीके पारस्परिक सम्बन्धपर प्रकाश डाला गया है। तीन और छोटे-छोटे रहस्यपूर्ण लेख हैं। इसके अत्यन्त उपयोगी तथा परम पवित्र भावोंपर ध्यान देकर इससे लाभ उठाना चाहिये।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस ( गोरखपुर )